परेड ग्राउँड

(एक उपन्यास)

लेखक
हंसराज 'रहबर'

जिन्हें शक हो वे करें और ख़ुदाओं की तलाश।
हम तो इंसान को दुनिया का ख़ुदा कहते हैं॥

दो शब्द

"दर्शन और कर्म जीवन की गाड़ी के दो पहिये हैं। कोई छोटा-बड़ा नहीं हो सकता।" —हंसराज 'रहबर'

जिस व्यक्ति ने अपने विचारों को अपने कर्म की मथनी से मथकर उक्त सत्य न सिर्फ पा लिया हो बल्कि अपना भी लिया हो, उसका वर्तमान उज्ज्वल और भविष्य उज्ज्वलतर है। हृदय का सरोवर जब प्राप्त सत्य की मेघ-वर्षा से भर जाता है, तब सुंदर कर्मों और वचनों के कमल उसमें खिलने स्वाभाविक हैं। कमलों के आकार-प्रकार में अंतर हो सकता है, लेकिन उनकी सामूहिक सुगंधियुत छटा में नहीं। यह छटा जब शब्दों से प्रकट होती है तब साहित्य बन जाता है, और जब कर्मों से प्रकट होती है तब सेवा।

निस्सदेह; हम यह बात श्री हंसराज 'रहबर' के विषय में कह रहे हैं। किसी को यह अतिशयोक्ति लग सकती है, लेकिन इस पर हम यह कहेंगे कि उनमें सत्य-छटा की मात्रा में कमी उनकी उग्र साधना को नहीं भुठला सकती। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व जीवंत अनुभूतियों, संघर्षों, सही राजनीतिक चेतना, अध्ययन और सर्वोपरि प्रगतिशील परम्परा को आत्मसात् करने की सतत चेष्टा के बल पर आधारित है। उनकी कला और भाषा में इसी लिए सरलता भी है।

श्री 'रहबर' व्यक्तिगत और राजनीतिक संघर्षों में तपे हैं। यही तप उन्होंने वाणी को दान दिया है, प्रमाण उनकी उर्दू और हिंदी में प्रकाशित रचनायें हैं।

श्री 'रहबर' साहित्यिक आलोचक ही नहीं अपितु आत्मालोचक भी है, और आत्मालोचक अपनी कमियों को पार करता हुआ विजय की राह पर बढ़ता है। प्रस्तुत उपन्यास के एक वाक्य की ओर इसी संदर्भ में ध्यान

सोचना उचित होगा—'मनुष्य यदि विचारशील हो, तो उसकी भूल उसका पाठ बन जाती है।" 'रहबर' ने अपनी भूलों को अपना पाठ बनाया है और आन्दोलनों के बीच अपने को साधा है। हमने उन्हें अधिकांशतः सामाजिक और सरल पाया है। 'रहबर' निडर और मस्त हैं। समाज को जैसा देखते हैं, कह देते हैं सचाई के साथ। हाँ, यह जरूर है कि सचाई कुछ कटु होती है। समझदार उस कटुता का महत्त्व समझते हैं।

वह घुमक्कड़ और सूक्ष्मदृष्टा भी हैं। 'परेड ग्राउँड' भी उनकी ऐसी ही प्रवृत्ति का जीता-जागता दिलचस्प चित्र है। उनके निवास-स्थान 'अकबर मंजिल' के पास ही एक लंबा-चौड़ा मैदान है जिसे 'परेड ग्राउँड' कहते हैं। यह मैदान अपने में एक इतिहास है, किन्तु; कब किसने इस ओर ध्यान दिया ? इस मैदान का प्रयोग तो होता है—कभी सरकार द्वारा, कभी मेले-ठेले अथवा प्रदर्शनी आदि के आयोजकों द्वारा और बहुधा उनके द्वारा जो न नागरिक हैं और न इंसान। प्रयोग के पिछले स्वरूप को 'रहबर' की पैनी दृष्टि ने देखा है, और जो कुछ देखा है, वही लिख दिया है। 'परेड ग्राउँड' में नामों की हेर-फेर के अतिरिक्त सब कुछ सत्य है, लेखक ने कला की कलम से सजाया-सँवारा भर है। इसी लिए इसमें जीवन है, राग है और रस है।

इस ग्राउँड की गोद में रहने वाले मुस्लिम फ़कीर, छोटे-मोटे खोंचे वाले तथा ठलुए जहाँ एक ओर मौजूदा ढांचे की विशृंखलता का परिचय देते हैं, वहाँ दूसरी ओर उज्ज्वल भविष्य की ओर इशारा भी करते हैं। उपन्यास के नायक कौशल (जो 'रहबर' की औपन्यासिक प्रतिच्छवि है) के अतिरिक्त जमाल, झुनिया, मरीयम तथा अब्दुल समद वे पात्र हैं जो उपन्यास पढ़ने के बाद मन में टिक जाते हैं। इब्राहीम साथियों में अविश्वास के कुफल का प्रतीक है। इस मैदान का अधिवासी एक कलई-गर हामिदअली है; जिसे सब कलईगर के नाम से जानते हैं। उसका इस दुनिया में और तो क्या होता, उसका अपना नाम भी अपना न रहा। यह तब प्रकट होता है जब वह कौशल से कहता है

कि "मैं अपना असली नाम बताऊँ? हमारे समाज में न जाने कितने अनगिनत इंसान हैं जिनका नाम उनकी जिन्दगी का साथ छोड़ चुके हैं !"

ऐसे ही इंसानों की आकांक्षाओं को उपन्यास का एक मुलफिया शब्द देता है—"यह युग बदलेगा, अवश्य बदलेगा और तभी मनुष्य मनुष्य बनेगा।" यह मदोष इंसान समाज में क्या मूल्य रखता है? किन्तु; उसके हृदय है, मन है, मस्तिष्क है और इसलिए उसके पास है बड़ी-से-बड़ी मानवीय अनुभूति; जिसे वह शंकर के तृतीय नेत्र की अनुभूति की संज्ञा देता है। जिस दिन यह अनुभूति अमल बनेगी उस दिन काम-भोगाव वर्ग क्षार-क्षार हो जायगा जैसे—"चितवन काम भयउ जरि छारा।"

जमाल की कल्पित अकीकी चिड़िया और उसके अपने लड़के की कल्पित ऊँची शिक्षा और प्रतिष्ठा, नगीदम को क्षितिज की ओर उठी रहने वाली दार्शनिकों जैसी दृष्टि, ललिता का राग और अब्दुल समद की जिन्दादिली के अलावा सामाजिक वलय और बुद्धिजीवियों की दुर्दशा के मार्मिक चित्र इसमें जहाँ-तहाँ मिलते हैं। कौशल ने देखा कि रात्रि के अंधकार में इंसानों की तमन्नाएँ भूत-प्रेत बनकर नाचीं, किन्तु वह समय दूर नहीं जब ये तमन्नाएँ दिन-रात नाचेंगी, खूब नाचेंगी।

'परेड ग्राउंड' का संदेश है कि इस मैदान के उपेक्षित अधिवासी बहुत दिन तक यूँ ही नारकीय जीवन नहीं बिताएंगे, उनकी आशाओं का सूरज अपनी लाल-लाल लालों के साथ चमकेगा और इस मैदान में ही नहीं, बल्कि तमाम हिंदुस्तान में भी जीवन छितराएगा।

मैं पाठकों और लेखक के बीच अधिक समय नहीं रहना चाहता—लीजिये यह रहा 'परेड ग्राउंड'। इसमें कौशल के साथ घूमिये, और देखिये अद्भुत चित्र।

१४-१२-५२

परेड ग्राउँड

१

वातावरण निस्तब्ध है और रात भीगी हुई है। कौशल परेड ग्राउँड में बैठा ऊपर की ओर देख रहा है। आकाश पर तारे टिमटिमा रहे हैं। बादल नही है; फिर भी वातावरण स्वच्छ नही है; एक धुंधलापन चारो ओर फैला हुआ है जैसे धुआँ वातावरण मे रच गया हो। उसका एक अविच्छेद अंग बन चुका हो।

ऊपर आकाश और नीचे यह मैदान फैला हुआ है। कौशल ने अनमने में घास का एक तिनका तोड लिया है और वह उसे दाँतो में लेकर चबा रहा है। वह शायद सोच रहा है कि मै यहाँ इतनी रात गये तक क्यों बैठा हूँ? इससे पहले उसके मस्तिष्क में एकदम बहुत से विचार उठ रहे थे—विचारों के घोड़े दौड रहे थे और वह अत्यत विक्षुब्ध था। लेकिन अब सिर्फ यही एक बात सोचने की रह गई है! यह भी कोई विशेष समस्या नही है। वह पहले भी कई बार इस बात पर विचार कर चुका है; लेकिन किसी परिणाम—किसी नतीजे पर नही पहुँच सका और न वह अब पहुँचना चाहता है। यह विचार तो चुपचाप बैठे रहने का बहाना मात्र है। जब उसे कुछ नही सोचना होता, चित शांत और स्थिर होता है, तो बस इसी एक बात पर निष्फल विचार किया करता है। क्योंकि सोचने का कोई उद्देश्य हो, तो यहाँ बैठने में वह आनंद अनुभव न हो, जो इस समय हो रहा है। उसे सिर्फ़ बैठे रहना और अनजाने विस्तार—अपार व्यापकता में झाँकते

दो साल पहले वह लुटा-पिटा दिल्ली में

घर, कोई आसरा नही था। वह अपनी ही तरह

साथियों के साथ इस मैदान में सोया करता था। पहले भी वह अपने जीवन में काफ़ी आवारा घूमा था। बहुत से स्थानों पर रहकर नये-नये और भांति-भांति के लोगों से परिचय प्राप्त किया था। इस प्रकार अपने अनुभव से उसने समाज, जीवन और दर्शन के अनेक पहलुओं को भली भांति समझ लिया था। इसीलिए इस सारे हंगामें में उसकी आत्मा अधिक सटपटाई नहीं थी और इस खुले मैदान में सोते हुए उसे कुछ बहुत कष्ट भी नहीं हुआ था; लेकिन उसके जीवन में यह एक नया अनुभव था। जिन लोगों से नया परिचय हुआ था, उनके साथ यों उठने-बैठने का पहले कभी विचार भी मन में नहीं आया था। वह उन्हें बहुत ही अधम और ज़लील समझता था। मनुष्य के समस्त दोषों और बुराइयों का उत्तरदायित्व समाज पर लादते हुए भी वह उनसे घृणा करता था। वे भी मनुष्य हैं; उनमें भी मनुष्यता है, वे भी मानव हैं; उनमें भी मनुजता है; सत्य और महानता है; यह वह कभी मान ही नहीं सकता था।

पिछले दो साल की घटनाओं ने उसे सत्य को नये ढंग से समझने की बुद्धि प्रदान की है। नये सम्बन्धों ने उस में नई सूझ-बूझ उत्पन्न की है। उसके ज़हन की बहुत-सी उलझनें साफ़ हो गई हैं। समाज और मनुष्य, सुख और दुःख तथा घृणा और प्रेम के बारे में उसका दृष्टिकोण एकदम बदल गया है। जैसे यह एक नये जीवन का सूत्रपात हो; जैसे उसकी समस्त मान्यताओं ने नया जन्म लिया हो; जैसे यह सब इस मैदान की देन हो। इसीलिए उसे मैदान से इश्क हो गया है।

वह अब बे-घर और बे-आसरा नहीं है। उसे अब एक कमरा मिल गया है। जहाँ वह अपनी ही तरह के एक श्रमजीवी मित्र के साथ रहता है। उस का मित्र कवि है। जो अमन, आज़ादी और सम्पन्न तथा प्राणवान् जीवन के गीत लिखता है, मनुष्य के सुंदर और महान् भविष्य की बातें करता है। यह गीत और ये बातें उसे पसंद हैं। लेकिन इन गीतों और इन बातों से भी अधिक रस, और माधुर्य उसे इस मैदान की

निस्तब्धता में महसूस होता है।

ठीक है कि अब वह इस मैदान में सोने के लिए विवश नहीं है; लेकिन जब उसका कोई ठिकाना और कोई सहारा नहीं था, तो उसे इसी मैदान ने अपनी स्नेहमयी गोद में सहारा दिया था; अपनी विशाल आत्मा और महत्ता से परिचित कराया था और निस्तब्ध सरगोशियों में विकासशील सत्य का भेद समझाया था। अब मैदान में और उसमें माँ-बेटे का-सा सम्बन्ध स्थापित है। वह सर्द और ख़ामोश रातों में उस की गोद में बैठे रहना पसंद करता है। उसकी अर्थपूर्ण सरगोशियों में उसका मन तरंगित हो उठता है और सुप्त आत्मा को शांति प्राप्त होती है।

कोई अप्रिय घटना हो जाय, उसके मन को कितना ही कठोर आघात पहुँचे, वह यहाँ आ बैठता है। चुपचाप बैठा रहता है। धीरे-धीरे तमाम क्षोभ मिट जाता है। वह फिर शांत चित्त से सोचने लगता है और हल्का-हल्का आनंद महसूस होने लगता है। वह प्रायः यह आनंद अनुभव करने ही इधर चला आता है, तथा बहुत देर तक मैदान की खुली फ़िज़ा में बैठा रहता है।

  

आज जब वह इधर आ रहा था तो रास्ते में एक अप्रिय घटना घटी। चावड़ी बाज़ार के नुक्कड़ पर एक पुलिस वाला एक आदमी को धड़ा-धड़ पीट रहा था और गालियाँ बक रहा था—"हरामजादा ! कहता है कि मुझे मत बुलाओ, मैं राम का नाम ले रहा हूँ। सारी बगुला-भक्ति निकाल दूँगा। उधर चोरियाँ करता है, और डाके डालता है और इधर माला जपता है। देख, (उसने कुर्ता उठाकर पेटी दिखाई) मैं ख़ुफ़िया पुलिस में इन्सपेक्टर हूँ, दो महीने से तेरी तलाश में हूँ।"

ख़ुफ़िया पुलिस का वह अफ़सर उस व्यक्ति को पीटता और गालियाँ देता रहा। सारे बाज़ार में सनसनी फैल गई। बहुत से लो गये। वे उस आदमी को पिटते देखते रहे, पुलिस अफ़सर व

सुनते रहे। किसी के मुंह से एक शब्द तक नहीं निकला, किसी ने पुलिस अफ़सर के आचरण का, इस खुली बर्बरता का विरोध नहीं किया। वे सशंक और भयभीत नेत्रों से खड़े देख रहे थे। एक मनुष्य का यों भरे बाज़ार में पीटे जाना बुरा लग रहा था; लेकिन चुप थे। कुछ कह-नहीं सकते थे। पुलिस से डर रहे थे।

कौशल मन-ही-मन तिलमला रहा था। व्यथित और दुःखी होकर सोच रहा था कि आगे बढ़कर पुलिस वाले का हाथ रोक ले और कहे—"माना कि तुम पुलिस अफ़सर हो; पर तुम्हें किसी आदमी को यों पीटने का क्या अधिकार है? इस बात का क्या सबूत है कि यह वही व्यक्ति है, जिसे तुम दो महीने से तलाश कर रहे हो? तुम्हारे कहने भर से तो कोई मनुष्य अपराधी नहीं हो जाता। माना कि यह वही व्यक्ति है, जिसे तुम ढूंढ़ रहे थे, तो भी इसे पकड़कर ले जाओ, अदालत में पेश करके इसका अपराध सिद्ध करो, इसे सज़ा दिलाओ। जब तक अपराध सिद्ध नहीं होता, वह आज़ाद हिन्दुस्तान का आज़ाद शहरी है। उसे पीटने, गालियाँ देने और अपमानित करने का तुम्हें क्या अधिकार है? वह कौनसा क़ानून है जिसने तुम्हें लोगों को भरे-बाजार पीटने का अधिकार दिया है? अगर यह व्यक्ति चोर, डाकू या बगुला भक्त है, तो तुम उससे बड़े अपराधी हो, क्योंकि तुमने एक निर्दोष मनुष्य को सब के सामने पीटा है, हमारे नागरिक अधिकारों को रौंदा है। समस्त मनुष्यता का—भारत की जनता का अपमान किया है।"

लेकिन सब को चुप देखकर वह भी चुप रहा। बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी। बोलता, तो पुलिस अफ़सर उसे भी चोरों और डाकुओं के गिरोह का व्यक्ति कहकर सब के सामने पीटता, गालियाँ देता और पकड़कर ले जाता। कौन उसे निर्दोष सिद्ध करता? किसी की ज़ुबान तक न खुलती। क़ानून की बात कौन सुनता है? सब को अपनी चिंता है। मानो भय और आतंक का राज्य है।

यह कोई एक घटना नहीं थी। ऐसी घटनायें नित्य होती

थीं। लोग उन्हें देखने और सहने के आदी हो गये थे। लोगों के अन्याय और अत्याचार को चुपचाप सहने से आत्मा का हनन होता है, मनुष्यता का ह्रास होता है और एहसास मिट जाता है। एहसास मिट जाय तो मनुष्य और पशु में कोई अंतर नहीं रह जाता। उसमें सस्कृति और सभ्यता का अंश बहुत थोड़ा रह जाता है और सस्कृति और सभ्यता ही मनुष्य को मनुष्य बनाती है।

कौशल थोड़ी देर पहले, इसी घटना को सोच-सोचकर दुःखी हो रहा था और अपनी विवशता पर कुढ़ रहा था। जब—अधिकांश जनता भय और आतंक में जीवन बिता रही हो, न्याय और अन्याय के प्रति उदासीन रहती हो, तो एक बुद्धिजीवी नौजवान अपने ही विचारों और भावनाओं से संतप्त रहता है। उसका एहसास वरदान न होकर शाप बन जाता है। नीति, न्याय और अधिकारों की बात छोड़कर पशुओं की तरह जीने को जी चाहता है।

मगर एहसास जूता या कमीज तो नहीं है कि मनुष्य उसे अपनी इच्छानुसार उतारकर अलग रख दे और जैसे चाहे रहने लगे। यदि ऐसा हो सकता, तो नाना प्रकार के दमन, अत्याचार और उत्पीडन के बावजूद मानवता और सभ्यता का जो विकास हुआ है, वह कभी न होता, मनुष्य वहशत और वर्बरता के युग से एक कदम भी आगे न बढ़ पाता। लेकिन उसने एहसास को सदा अपने रक्त से सींचा है और जोत से जोत जलाई है और जलाता रहेगा। यदि वह मनुष्य है, तो मनन से—एहसास से उसका पिंड नहीं छूट सकता।

कुछ ऐसी ही बात सोचकर कौशल ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और उस का चित्त शांत हो गया, और वह मैदान के विस्तार में झाँकने लगा।

२

गर्मियों के दिनों में जो सैंकड़ों, हजारों लोग उसके इर्द-गिर्द लेटे रहते थे, उन्होंने सर्दी से बचने के लिए अपनी-अपनी सामर्थ्यानुसार

ढूंढ़ लिए हैं, लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं जो स्थायी रूप से इस मैदान के वासी हैं। दिसम्बर के इस कड़कते जाड़े में भी वे अपनी रातें इसी मैदान में बसर करते हैं। उनमें से बहुतों के सिर पर आसमान के सिवा कोई दूसरी छाया नहीं। कपड़ा भी नाकाफ़ी है। लेकिन वे इस मैदान की धरती को स्नेह करते हैं और उससे यों चिपटकर सोये रहते हैं जैसे बालक अपनी माँ की छाती से चिपटकर सोता है। धरती का शरीर उन्हें गर्मी पहुँचाता है—प्रेम और वात्सल्य की गर्मी ! धरती का प्रेम उनकी उत्पीड़ित आत्मा को सांत्वना प्रदान करता है। वे भी धरती से—इस मैदान से—प्रेम करते हैं।

यह एक सम्बन्ध है, जो कौशल और इस मैदान के स्थायी वासियों को आपस में एक अदृश्य सूत्र में बांधे हुए है। यह सम्बन्ध उसे इन लोगों के बहुत निकट ले आया है और उन्हें समझने में उपयोगी सिद्ध हुआ है। उनमें से कुछेक लोगों ने इस सम्बन्ध को समझ लिया है। वे कौशल के मित्र बन गए हैं। जब वह उनके बीच जाता है, तो वे अपने मूक नेत्रों से उसका स्वागत और सम्मान करते हैं। ये लोग जमाल, रफ़ीक़, बुंदे साईं, रशीद और मरीयम हैं। कुछेक ऐसे भी हैं, जिन के वह रंग-रूप और आत्मा से परिचित है; लेकिन नाम नहीं जानता। और नाम जानने की ज़रूरत भी नहीं है, शायद उनके नाम रखे ही न गए हों। उन सब का एक ही नाम है—और वह है मनुष्य !

वह इन लोगों की तरह इस मैदान का स्थायी वासी नहीं है, लेकिन उनसे बराबर मिलता रहता है, उनसे बातें करके प्रसन्न होता है। इस मिलने-जुलने में कोई रुकावट नहीं है। यहाँ कोई दरवाज़े और दीवारें नहीं हैं। वह जिस समय भी चाहे उनके पास आ सकता है, उनकी किसी भी बात में शामिल हो सकता है। यहाँ किसी नियम और शिष्टाचार की पाबन्दी नहीं है, कोई भेद और रहस्य नहीं है। वे उसे अपनी निजी बातें यों सुना देते हैं, जैसे वे उसके व्यक्तित्व से विशेष सम्बन्ध रखती हों, जैसे उसमें और उनमें कोई अन्तर न हो। वह उसे अपने झगड़ों तक

में मध्यस्थ बना लेते हैं ।

उस दिन जब वह कलीम अल्लाह शाह के मजार के निकट उनकी बरसाती कपड़े की छोटी-छोटी और पुरानी झोपड़ियों की ओर गया, तो रात के आठ-नौ बजे होंगे । रफ़ीक और उसकी पत्नी आपस में लड़-झगड़ रहे थे । औरत बहुत ही ऊँचे और कटु स्वर में प्रायः चीखकर कह रही थी—

"मैं तो बोलूंगी, हर एक से बोलूंगी । यह कौन होता है मना करने वाला ? इसकी गालियाँ भी सहे और जूतियाँ भी खायें ।"

"स्त्री का तो धर्म ही यह है जिस तरह भी आदमी रखे, उसी तरह रहे ।" एक लम्बे कद का आदमी, जिसने सिर पर अगोछा बाँध रखा था, अपनी काली दाढ़ी में हाथ फेरते हुए उसे उपदेश दे रहा था ।

"मैं इसके यहाँ नहीं बैठूंगी । तलाक़ दे दे, वरना फसादूंगी । बहन का खसम मुझे मारने आता है ।" औरत ने एकदम बहुत सी गालियाँ दे डालीं ।

"देखा, गालियाँ देती है । फिर कहोगे कि मैं ही बुरा हूँ ।"—रफ़ीक ने फ़रियाद की ।

"आपस में लड़ा नहीं करते ।" दाढ़ी वाले व्यक्ति ने औरत को समझाना जारी रखा, "वह गरम हो, तुम नरम हो जाओ और तुम गरम हो तो वह नरम पड़ जाय । एक दूसरे की सहकर ही निर्वाह होता है । वरना जिन फ़कीरनियों ने अपने मर्दों को छोड़ दिया है, माँगती फिरती हैं ।"

"माँगती हैं, तो मजे से खाती भी हैं । यह छोकरी का यार मुझे क्या खिलायेगा ? इसका अपना पेट तो भरता ही नहीं, सारा दिन पड़ा लोगों की चुगलियाँ करता रहता है । वह औरत बदमाश है, वह आदमी लफंगा है, जैसे दुनिया भर में बस यही एक शरीफ़जादा है ।"

"जानती ही हो, हम लोग तो फ़कीर हैं । जो कुछ मिल गया उसी पर गुज़ारा करना पड़ता है । माँगने जाते हैं, देना दाता की मर्जी है—कभी घी घना, कभी मुट्ठीभर चना और कभी उस से भी मना !"

"यह तो माँगने भी नहीं जाता निकम्मा पड़ा........" औरत ने फिर गाली दी।

"देख, गाली देती है। मैं तुझे कहता हूँ कि गाली मत दे।"

"क्यों न दूँ, मैं तो दूँगी गाली। जो हमारा दिल दुखाता है, हम भी दुखायेंगे उसे।"

"मैंने कैसे दुखाया है तुम्हें ? बाज़ार से रोटी ला दी है, सालन ला दिया है। खा लो बैठकर।"

"कैसे खा लूँ ? सालन तो आप खा आया रास्ते में।"

"सुनिये, ज़रा मेरी बात और फिर आप ही इन्साफ़ कीजिए।" रफ़ीक़ ने कौशल से कहा, "बाज़ार में आज कहीं एक आने का सालन मिलता है। मैं रोटी लेने गया था, मिन्नत-खुशामद करके एक आने का सालन भी ले लिया। उसने शोरबा डाल दिया और एक ज़रा-सी बोटी डाल दी। मैंने लाकर इसके सामने रख दी। इसने दो-चार कौर खाये, फिर एकदम सब कुछ पटक दिया और कहा, इसमें तो कुछ भी नहीं है। बोटियाँ तुम खुद रास्ते में खा आये। आप बताइये, कोई अपनी औरत से भी ऐसा कर सकता है। मुझे जो कुछ मिलता है, मैं लाकर हमेशा इसे देता हूँ। फिर भी लड़ती-झगड़ती रहती है।"

कौशल सोच में पड़ गया। उसने रफ़ीक़ की बात से अंदाज़ा लगाया कि झगड़े का यह पहला ही अवसर नहीं है। उनमें यह लड़ाई-झगड़ा अकसर होता है और बीबी ऐसे समय वे सब बातें कह डालती है, जो इस बीच में उसके मन में एकत्रित होती रहती हैं, उसे कोंचती और तंग करती रहती हैं। जब तक वह अपने मन का क्षोभ व्यक्त न कर दे, उसे शांति प्राप्त नहीं होती। इस समय उसे जो कुछ खाने को मिला था, उससे वह संतुष्ट नहीं थी और इस के लिए वह रफ़ीक़ को ज़िम्मेदार समझती थी; इसलिए उसे कोस रही थी। इन्साफ़ एक ही बात पर तो निर्भर नहीं होता। बहुत सी कही-अनकही बातें झगड़े की तह में निहित होती हैं। महँगाई बढ़ रही थी, इसलिए भूख बढ़ रही थी। भूख इन्-

सान को नीच और कमीना बना देती है। इलाक़ में उसकी भावना नहीं रहती। इन लोगों का तो जीवन ही अभाव और कटुता में व्यतीत होता है। झगड़े के लिए किसी एक व्यक्ति को दोषी ठहराना बेकार है। इसलिए कौशल ने संक्षेप में कहा—

"इन्होंने ठीक ही कहा है। इस समय वह गरम है, तुम चुप रहो। आपस में लड़ना मुनासिब नहीं होता।"

औरत गालिया देती रही और रफ़ीक़ सुनता रहा। उस पर कोई असर न होते देखकर औरत का क्रोध और बढ़ा। उसने गालियाँ और भी तेज़ कर दी। वह झुंझलाहट से प्रायः पागल-सी हो गई थी।

रफ़ीक़ चुपचाप झोंपड़ी में जा बैठा। झोंपड़ी इतनी तंग थी कि सोना तो क्या, उसमें दो व्यक्ति खुलकर बैठ भी नहीं सकते थे। मगर मियां-बीवी उसी में गुज़र-बसर कर रहे थे। दोनों दुबले-पतले और क्षीणकाय प्राणी थे।

३

दाढ़ी वाला वह आदमी, जिसने अपने सिर पर अंगोछा बांध रखा था, कौशल के निकट आ गया। उसने हाथ बगलों में दबा रखे थे और बाँहें कैंची के आकार में छाती को भींचे हुए थी। होंठो पर हल्की-सी मुस्कराहट थी। झगड़ा निपटाने के लिए कौशल को अपनी बात दोहराते सुनकर वह मन-ही-मन में प्रसन्न हुआ। यह मुस्कराहट उसी प्रसन्नता की सूचक थी। आदमी जिससे मान प्राप्त करता है, उसमें वह आत्मीयता अनुभव करने लगता है। इसी नाते वह कौशल को अपना परिचय देते हुए बोला—

'मैंने चौदह साल फकीरी की है और गूट-गूट घूमा हूँ। फकीरों को खूब देखा है। इन सब को ऐसे छान मारा है, जैसे औरत आटा छाना करती है; मगर मैंने किसी में फकीरी नहीं देखी।"

इस व्यक्ति से कौशल की पहली भेंट थी। एक दृष्टि सिर से पाँव तक डाली। क़द लम्बा और शरीर सुगठित था। मैदान के दूसरे वाशिन्दों

की अपेक्षा कपड़े साफ़-सुथरे, कीमती और साबित थे और स्वेटर भी पहन रखा था। मुख-मुद्रा खिली हुई थी। बात कहते हुए आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव से मुस्करा रहा था। कौशल को इस व्यक्ति के प्रति आकर्षण हुआ और पूछा—

"आप भी क्या यहीं रहते हैं ?"

"जी हाँ, मैं भी यहीं रहता हूँ।" वह बोला और संकेत से कौशल का ध्यान बाईं ओर खींचते हुए कहा, "देखिये वह चारपाई मेरी है।"

सरिस तले एक छोटी-सी झोंपड़ी थी और उसमें चारपाई बिछी हुई थी। दूसरे फ़कीरों को टाट भी मयस्सर नहीं थे; इसलिए अपनी चारपाई का उल्लेख करते हुए इस व्यक्ति का स्वर स्वाभाविक रूप से गर्वोन्मुख भावना को व्यक्त कर रहा था।

"पहले कभी नज़र नहीं आये।" कौशल ने कहा।

"मैं सड़क के उस तरफ़ दरगाह की नौकरी करता हूँ। बारह साल तक यहीं कलीम अल्लाह शाह की नौकरी करता रहा हूँ। फिर पीर साहब किसी बात पर मुझ से नाराज़ हो गये और मुझे उधर अलफ़शाह की दरगाह पर भेज दिया। मैं चला गया। वह दरगाह वहाँ किले के नीचे है, मैंने कई बार आपको उधर से गुजरते देखा है। मैं एक साल तक नौकरी करता और वहीं रहता रहा। आखिर एक दिन पीर साहब खुश हो गये और मुझे फिर यहाँ बुला लाये।"

"अच्छा, पीर साहब ने तुम्हें खुद बुलाया ?" कौशल ने आश्चर्य प्रकट किया।

"जी हाँ, पीर साहब मुझे ख्वाब में दिखाई दिये और कहा कि अब तुम्हारी सज़ा पूरी हो गई है और तुम इधर आ सकते हो।"

कौशल ने एकदम मर्मभेदी दृष्टि से उस व्यक्ति की ओर देखा। वह शांत और गम्भीर बना हुआ था। जब मनुष्य शांत और गम्भीर हो तो उसका व्यक्तित्व कुहरे में लिपटे हुए वातावरण के सदृश रहस्य-मय बना रहता है। सशंक दृष्टि उसे भेद नहीं सकती, उसके मन में पैठ

नहीं सकती। उस व्यक्ति की मुख-मुद्रा से जान पड़ता था, जैसे वह आपबीती सुना रहा हो, उसमें झूठ और बनावट का लेश मात्र भी न हो। कौशल ने भी किसी प्रकार की शंका प्रकट नहीं की। सरल भाव से पूछा—"वह बात क्या थी जिस पर पीर साहब नाराज़ हो गये थे ?"

"बात यों थी," उसने बगल में से दायाँ हाथ निकालकर दरगाह के पिछली तरफ़ इशारा किया, "पहले यहाँ केले के दरख्त थे बहुत घने ! उनमें छिपकर जाने क्या-क्या होता था। अब भी बहुत कुछ होता है। ये सब कहने को तो फ़क़ीर हैं; लेकिन आम लोगों से भी गये-गुज़रे हैं। सारा-सारा दिन जुआ खेलते हैं। दुनिया में कौनसा ऐब है जो ये नहीं करते। सरकार को पता चल जाये, तो किसी को भी यहाँ न रहने दे। एक-एक को जेल में डाल दे। मैं सब देखता हूँ और अपने मस्त रहता हूँ। किसी से कुछ नहीं कहता। पीर मुरशद हमारे गुनाह अपनी पनाह में ले।" उसने कानों को हाथ लगाये और फिर ऊपर को हाथ उठाकर अरबी के कुछ शब्द गुनगुनाये, जैसे दुआ माँग रहा हो, इसके बाद आगे कहा, "मुझ से जो सलूक बन पड़ता है, कर देता हूँ, यह मेरा ही दम है कि घूमता-फिरता कोई फ़क़ीर इधर आ निकले, उसे मैं अपना मेहमान समझता हूँ, बिसात भर ख़िदमत करता हूँ। कभी किसी को भूखा नहीं सोने दिया।..."

"आप वह बात सुना रहे थे, जिससे पीर साहब नाराज़ हुए थे।" कौशल ने उसे टोका।

"हाँ, उन केलों में छिपकर बहुत से गुनाह होते थे। मैं सब कुछ देखता था और चुप रहता था। पीर साहब ख़ुद जानें, हमें मतलब ? लेकिन एक दिन दरियागंज इलाके का थानेदार किसी औरत को साथ लेकर आया और केलों के उन दरख्तों में जा घुसा। मैं भी उनके पीछे-पीछे गया। एक कपड़ा बिछाकर औरत ज़मीन पर लेट गई और थानेदार ऊपर झुका। मैंने जाते ही उसकी कमर में इतने ज़ोर की लात लगाई कि वह मुँह के बल धरती पर जा गिरा। फिर ख़ुदा जो

भागा, तो पीछे मुड़कर भी नहीं देखा।"

वह दूर अंधेरे में झांकने लगा, जैसे थानेदार को भागते हुए देख रहा हो। उसके होंठों पर फिर मुस्कराहट खेल रही थी और वह अपनी वीरता पर प्रसन्न हो रहा था। "लेकिन इसके बाद जब मैं जाकर सोया," एक मिनट चुप रहने के बाद वह फिर बोला, "तो पीर साहब दिखाई दिये। वे बहुत नाराज़ थे। उनका कहना था कि थानेदार हमारी पनाह में आया था। जब हम खुद सब कुछ देखते हैं, तो तुम्हें उसे सज़ा देने का क्या इख्तयार था ? उठो, अभी यहाँ से चले जाओ और दूसरी तरफ़ जाकर रहो। जब तक हम दोबारा न बुलायें इधर न आना, तुमने गुनाह तो बहुत बड़ा किया है; लेकिन तुम्हारी खिदमत के एवज़ मुआफ़ कर देते हैं।"

"इसका मतलब है कि पीर साहब सब कुछ जानते हैं ?"

"जी हाँ, सब कुछ जानते हैं और बहुत करामात वाले हैं। आप शाहजहाँ बादशाह के पीर थे। बादशाह सलामत कोई भी काम शुरू करने से पहले पीर साहब से दुआ हासिल करते थे। हुकूमत का कोई भी काम पीर साहब के मशविरे के बग़ैर नहीं होता था।"

"अच्छा, आप शाहजहाँ बादशाह के पीर थे !"

"जी हाँ, शाहजहाँ के पीर थे।" उस व्यक्ति ने पूर्ण आत्म-विश्वास के साथ कहा और फिर जामा मस्जिद की ओर देखने लगा। जैसे उसकी बात इतना ही बड़ा ऐतिहासिक सत्य हो, जितनी कि जामा मस्जिद।

"लेकिन शाहजहाँ ने अपनी बेग़म की कब्र पर तो ताजमहल बनवा दिया; लेकिन पीर साहब का मज़ार इस क़दर मामूली बनवाया !" कौशल ने एतराज किया।

"नहीं साहब ! ताजमहल शाहजहाँ ने नहीं बनवाया।" उस व्यक्ति ने विरोध किया।

"हमने किताबों में तो यही पढ़ा है कि ताजमहल शाहजहाँ ने बनवाया है और इसकी वजह यह थी कि उसे अपनी मलिका से

मुहब्बत थी।"

"किताब की बात छोड़िये," वह यों मुस्कराया जैसे कौशल ने बहुत ही मूर्खता की बात कह दी हो, "मैं आपको हकीकत बताता हूँ। हम लोग हैं तो अनपढ; लेकिन अल्लाह के फज़ल से ऐसी-ऐसी बातें जानते हैं, जो किताबें पढने वालों को क़यामत तक मालूम नहीं हो सकतीं। और फिर अंग्रेजों ने तो हमारी किताबों में ऐसा झूठ मिला दिया है जिसकी कोई हद नहीं।"

वह दाढी खुजलाते हुए एक बार फिर मुस्कराया। कलीम अल्लाह शाह के मज़ार पर जो बिजली की बत्ती जल रही थी, उसके प्रकाश में कौशल उसकी बत्तीसी देख सकता था। उसकी आँखों में आत्मीय गौरव और सम्मान की भावना उभर आई थी। हाथ उसने बदस्तूर बगलों में दबा रखे थे, फूलती हुई छाती पर बाजू तनिक और कस लिये थे। बायाँ पाँव उठाकर दाईं ओर रख लिया, जिससे बायाँ घुटना दायें घुटने के ऊपर आ गया और यों शरीर का सारा बोझ लगभग एक टाँग पर डालकर उसने कहना शुरू किया—

"ताजमहल जहाँगीर बादशाह ने अपनी मलिका नूरजहाँ की माँ के लिए बनवाया था। नूरजहाँ एक खादिमा की बेटी थी। उसने जहाँगीर से कहा कि मेरी वालदा की रिहायश के लिए एक ऐसा महल बनवाओ कि जन्नत का नक्शा जमीन पर उतर आये। और मलिका की फरमाइश पूरी करने के लिए जहाँगीर बादशाह ने ताजमहल बनवाया था।"

"तुमने यह एकदम नई बात बताई कि ताजमहल जमीन पर जन्नत का नक्शा है। किसी किताब में यह बात नहीं लिखी, तुम्हें वाकई बहुत कुछ मालूम है।"

कौशल से अपनी प्रशंसा सुनकर उसे बढ़ावा मिला और उसका मुख बाल-सुलभ उल्लास से चमक उठा। बोला—

"मैं आपको यह भी बता सकता हूँ कि बादशाह ने जन्नत कैसे देखी

मुहब्बत थी।"

"किताब की बात छोड़िये," वह यों मुस्कराया जैसे कौशल ने बहुत ही मूर्खता की बात कह दी हो, "मैं आपको हक़ीक़त बताता हूँ। हम लोग हैं तो अनपढ़; लेकिन अल्लाह के फ़ज़ल से ऐसी-ऐसी बातें जानते हैं, जो किताबें पढ़ने वालों को क़यामत तक मालूम नहीं हो सकतीं। और फिर अंग्रेज़ों ने तो हमारी किताबों में ऐसा झूठ मिला दिया है जिसकी कोई हद नहीं।"

वह दाढ़ी खुजलाते हुए एक बार फिर मुस्कराया। कलीम अल्लाह शाह के मज़ार पर जो बिजली की बत्ती जल रही थी, उसके प्रकाश में कौशल उसकी बत्तीसी देख सकता था। उसकी आँखों में जातीय गौरव और सम्मान की भावना उभर आई थी। हाथ उसने बदस्तूर बगलों में दबा रखे थे, फूलती हुई छाती पर बाज़ू तनिक और कस लिये थे। बायाँ पाँव उठाकर दाईं ओर रख लिया, जिससे बायाँ घुटना दायें घुटने के ऊपर आगया और यों शरीर का सारा बोझ लगभग एक टांग पर डालकर उसने कहना शुरू किया—

"ताजमहल जहाँगीर बादशाह ने अपनी मलिका नूरजहाँ की माँ के लिए बनवाया था। नूरजहाँ एक ख़ादिमा की बेटी थी। उसने जहाँगीर से कहा कि मेरी वालदा की रिहायिश के लिए एक ऐसा महल बनवाओ कि जन्नत का नक़्शा जमीन पर उतर आये। और मलिका की फ़रमाइश पूरी करने के लिए जहाँगीर बादशाह ने ताजमहल बनवाया था।"

"तुमने यह एकदम नई बात बताई कि ताजमहल जमीन पर जन्नत का नक़्शा है। किसी किताब में यह बात नहीं लिखी, तुम्हें वाकई बहुत कुछ मालूम है।"

कौशल से अपनी प्रशंसा सुनकर उसे बढ़ावा मिला और उसका मुख बाल-सुलभ उल्लास से चमक उठा। बोला—

"मैं आपको यह भी बता सकता हूँ कि बादशाह ने [illegible]

उसका नक़्शा क्योंकर उतारा। यह भी एक दिलचस्प कहानी है, तो सुनाऊँ ?"

"हाँ, हाँ ! ज़रूर सुनाओ।" कौशल ने उसे, प्रोत्साहित किया।"

उसने बाईं टांग दाईं टाँग से उतारकर पहलू बदला और सीधे होकर जहाँगीर के जन्नत देखने का किस्सा इस प्रकार कहना शुरू किया—

"बादशाह का एक सिपाही था—रमज़ानी। वह पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ता था, क़ुरान शरीफ़ की तलावत करता था और हर घड़ी अल्लाह के ध्यान में मस्त रहता था। एक दिन की बात है, बादशाह सलामत महल में बारद होने के लिए आये, ड्योढ़ी पर रमज़ानी का पहरा था। व अपने ही ध्यान में मस्त था। इसलिए उसने हुज़ूर को नहीं देखा। जब बादशाह सलामत बहुत क़रीब आ गए, तब कहीं उसने आहट सुनी और चौंक कर सलाम किया। 'कहाँ गए हुए थे ?' बादशाह ने रमज़ानी से दरियाफ़्त किया।—'कहीं नहीं हुज़ूर ! यहीं हाज़िर था और हुज़ूर की खिदमत बजा रहा था'—'नहीं, तुम तो कोई और ही खिदमत बजा रहे थे। सच कहो, हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे।' रमज़ानी ने सब सच बताया कि वह अल्लाह ताला के हुज़ूर में हाज़िर था और जन्नत का मन्ज़र देख रहा था।—'तो क्या हमें भी जन्नत दिखा सकते हो ?' 'अगर हुज़ूर ख्वाहिश रखते हों तो कुछ मुश्किल नहीं, ज़रूर दिखाई जा सकती है।' 'क्यों नहीं हमें और हमारी मलिका को जन्नत दिखाओ।' सिपाही को हुक्म मिलने की देर थी। उसने पहले तो बे-अदबी के लिए माफ़ी चाही और फिर एक बगल में बादशाह और दूसरी में मलिका को दबा और उन्हें जन्नत में ले गया।"

ताजमहल के बारे में यह किस्सा परियों की कहानी की तरह दिलचस्प था और सुनाने के ढंग से जान पड़ता था कि वह उसकी सच्चाई में उसी प्रकार विश्वास रखता है, जिस प्रकार बच्चे एक परियों की कहानी को सच मान लेते हैं। उसने जब यह किस्सा किसी बुज़ुर्ग औलिया

ज़ुबानी सुना था, तो उसे इसकी सच्चाई पर तनिक भी संदेह नहीं हुआ था, उसके उपरान्त वह स्वयं उसे सैकड़ों बार दूसरों को सुना चुका था और किसी ने भी उसकी सत्यता पर संदेह प्रकट नहीं किया था। अब यह किस्सा उसके जीवन का अविभाजित अंग बन चुका था, उसकी आत्मा में निहित हो चुका था। कौशल यदि उसे अपने ऐतिहासिक ज्ञान से झुठलाना चाहता, तो उसे कदाचित् सफलता प्राप्त न होती, केवल सुनाने वाले की भावना को आघात पहुँचता। इसलिए वह इस प्रकार चुपचाप सुनता रहा, जैसे सुनाने वाले की तरह वह भी उसे सच मानता हो। बारबार सुनने-सुनाने और दुहराये जाने से बहुत से झूठ मनुष्य के जीवन का अंग बन जाते हैं और धीरे-धीरे एक ऐसे अमर सत्य का पद प्राप्त कर लेते हैं कि लोग उनके बारे में सोचना ही छोड़ देते हैं। उनके बारे में किसी प्रकार की शंका और आक्षेप को गवारा नहीं करते। ज्ञान और विज्ञान उन्हें अंधविश्वास और रूढ़िवाद कहता रहे, पर मानने वाले उन्हें अपने जीवन का सर्वस्व मानते हैं। और कुछ लोगों के ये विश्वास इतने निरीह और निर्दोष होते हैं कि उन पर यकायक एतराज़ कर देना ठीक भी नहीं होता क्योंकि यह विश्वास उनके दरिद्र और अन्धकारमय जीवन में जुगनू की हैसियत रखते हैं और उसे आलोकित करते हैं।

कौशल चुपचाप सुनता रहा और वह व्यक्ति अपनी ही दृष्टि में आप ऊपर उठता रहा। जब वह शरीर को ऊपर खींच रहा था, तो लगता था कि एड़ियां ऊपर उठाकर पंजों के बल खड़ा हो गया है और यों उस का कद बढ़ गया है। इस किस्से की महत्ता उसके जीवन की महत्ता थी, जैसे-जैसे किस्सा आगे बढ़ता रहा उसका शरीर भी बढ़ता और फैलता रहा।

उसने जीवन में शायद पहली बार एक पढ़े-लिखे व्यक्ति से अपने ज्ञान की चर्चा की थी और उसे श्रद्धा और ध्यान से सुनता देखकर वह इतना प्रसन्न हुआ कि एक साथ दो-तीन किस्से और सुना डाले, जो अकबर, जहांगीर और शाहजहां आदि मुग़ल सम्राटों और उस समय के पीर-फकीरों से सम्बन्धित थे। उनसे विदित था कि उस युग के मान्य-

निक जीवन में पीर-फकीरों को भी उतना ही महत्त्व प्राप्त था जितना कि सम्राटों को। और सुनाने वाले की भावोद्रेक और मानसिक स्थिति से यह भी विदित था कि उसकी आत्मा अब भी उसी युग में भटक रही है, अर्थात् अपनी कल्पना-शक्ति से वह अब भी उसी युग में जीवन विता रहा है। उसके वाद तीन-साढ़े तीन शताब्दियों का जो इतना लम्बा और सामाजिक परिवर्तनों से ओतप्रोत समय वीत गया है, वह उसकी दृष्टि में एकदम नगण्य है।

रात काफ़ी वीत गई थी और सर्दी वहुत वढ़ गई थी। ठंडी हवा के झोंके शरीर को चीरते हुए निकल जाते थे। सव लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों अथवा फटे-पुराने ओढ़नों में दुवक गये थे। वह दाढ़ी वाला व्यक्ति वस्तु-स्थिति से वे-खवर अपनी वात सुनाये जा रहा था। एक के वाद दूसरा किस्सा झट शुरू हो जाता था। वे किस्से अलिफ़ लैला की कहानियों की तरह खत्म न होने वाले जान पड़ते थे और वह उन सव को एकदम सुना देने के लिए उत्सुक भी था। लेकिन कौशल अव जाना चाहता था। "अच्छा, आज से हम-तुम दोस्त हुए।" विदा माँगने के लिए कौशल ने हाथ आगे वढ़ाया जो उस व्यक्ति ने वगल से निकले हुए अपने गर्म हाथ में थाम लिया, "मैं तुम से गाहे-गाहे मिलता रहूँगा। तुम्हारा नाम क्या है? और तुम्हें कैसे ढूँढ़ा जाय?"

"नाम तो मेरा इब्राहीम है; लेकिन सव लाल पगड़ी वाला कहते हैं। यह देखो, मेरे सिर पर लाल पगड़ी है। मैं मतवल्ली हूँ। यह पगड़ी वारह साल की खिदमत के वाद मिलती है। हर एक आदमी इसे नहीं पहन सकता। तुम यहाँ आकर किसी से भी पूछ लेना कि मुझे लाल पगड़ी वाले से मिलना है।"

इब्राहीम की आँखों में स्वाभिमान की भावना चमक रही थी, जीवन चमक रहा था। यह स्वाभिमान की चमक थी। स्वाभिमान मर जाये, तो मनुष्य मर जाता है। इसलिए मनुष्य चाहे जीवन के किसी भी स्तर पर हो किसी न किसी प्रकार स्वाभिमान की रक्षा करता है।

४

दूसरे दिन कौशल की छुट्टी थी। वह ग्यारह-बारह बजे घूमता-घामता परेड ग्राउंड में आ निकला। इब्राहीम बैठा खाना खा रहा था। वह अकेला नहीं था। उसके साथ एक अधेड़ उम्र की औरत और एक मर्द भी बैठा था। वे तीनों इकट्ठे भोजन कर रहे थे। मर्द का शरीर भारी था और चेहरे पर मेंहदी रंगी दाढ़ी थी, जो इब्राहीम की दाढ़ी की अपेक्षा अधिक लम्बी और घनी थी। औरत दुबली-पतली और स्वस्थ थी। उसने ठुड्डी और गाल गुदवा रखे थे और वह हाथों और पाँवों में गिलट के कुछेक आभूषण पहने हुए थी। पान अधिक चबाने से होंठ और दाँत दोनों स्याह पड़ गये थे।

"आइये बाबू जी, खाना खाइये" इब्राहीम ने कौशल को देखते ही पहचान लिया।

वे धूप में बैठे थे। ज़मीन ढलवान थी। इस ढलवान के बाद जो ज़मीन थी, वह मैदान का कम और सड़क का भाग अधिक थी। वहाँ से पैदल चलने वाले राहगीर प्रतिक्षण गुजरते रहते थे और परे सड़क पर मोटरों, टाँगों और बसों का ताँता लगा रहता था। इधर ढलवान पर ये मैदान के निवासी धूप सेका करते थे।

कौशल इब्राहीम के करीब बैठ गया और इधर-उधर देखने लगा। गनीमअल्लाह के मज़ार से इधर हटकर कुछ कब्रें थीं। उनके इर्द-गिर्द इन फ़कीरों की झोंपड़ियां थीं। कब्रें और झोपड़ियाँ दोनों बहुत पुरानी जान पड़ती थीं; दोनों पर गर्द पड़ी हुई थी। कब्रों में मुद्दत हुई मुर्दे दफ़नाये गये थे और झोंपड़ियों में जीवित मनुष्यों ने अपने आप को दफ़ना रखा था। कब्रों के वासी गहरी नींद सो रहे थे, जिंदगी के दुख-दर्द से छूट गये थे; लेकिन झोंपड़ियों के वासी अभी तक जिंदा थे। धूप सेकने बाहर निकल आये थे; कुछ बैठे थे, कुछ लेटे हुए थे और कुछ गप्पें हाँक रहे थे। वे सर्दी-गर्मी और भूख-प्यास महसूस कर सकते थे; अपनी हीन अवस्था को गप्पों में भुला सकते थे। यही उनके जीवित होने का प्र[illegible]।

रफ़ीक़ की औरत, जो रात को सालन के लिये झगड़ रही थी; ऊँची-ऊँची बोलकर और गालियां देकर अपने दिल की भड़ास निकाल रही थी, और शायद यों अपने आपको अपने जीवित होने का यक़ीन दिला रही थी, अब एक ओर बैठी जुएँ मार रही थी । उसका रंग काला, माथा तंग और शक्ल बंदरी से मिलती-जुलती थी । अब उसे शांत बैठा देखकर लगता था जैसे बोलना जानती ही न हो । कौशल एक मिनट तक उसकी ओर झांकता रहा । उसकी आंखों में उत्सुकता और जिज्ञासा थी । न जाने इस आकर्षणहीन प्राणी में वह क्या खोज रहा था । उसने भी कौशल को अपनी ओर झांकते देख लिया था; लेकिन वह आजारबंद खोले नेफे में से जुएँ देख रही थी—देखती रही । किसी की निगाहें उस पर पड़ रही हैं, इस बात की उसे ज़रा भी परवा नहीं थी ।

"रात के झगड़े का फ़ैसला हो गया?" कौशल ने इब्राहीम से पूछा ।

"यहां झगड़े और फ़ैसले साथ-साथ चलते हैं" इब्राहीम ने मुंह में कौर रखते हुए कहा ।

दाईं ओर सिरस का बड़ा वृक्ष था । उसके नीचे जो झोंपड़ी बनी हुई थी, वह भी काफ़ी बड़ी थी और उसमें पांच-छः प्राणियों का एक पूरा परिवार रहता था ।

"यह किसकी है ?" कौशल ने झोंपड़ी की ओर संकेत करके पूछा ।

"यह चारपाई साहब ? यह चारपाई मेरी है । इस पर मैं सोता हूं ।" इब्राहीम ने [illegible] आब से उत्तर दिया । उसके स्वर में वही स्वाभिमान झलक रहा था । वह भूल गया था कि वह इस चारपाई का परिचय पहले ही कौशल को दे चुका है ।

चारपाई के पायों से लाठियां बांधकर उन पर एक बरसाती तान दी गई थी । इस तरह इब्राहीम की संक्षिप्त झोंपड़ी बनी हुई थी । और वह बड़ी झोंपड़ी के सामने यों मालूम होती थी जैसे तबेले के आगे मुर्गियों का दरबा बना हुआ हो ।

"हां, यह चारपाई तो तुम्हारी है । मैं उस बड़ी झोंपड़ी के बारे में

पूछ रहा हूँ।" कौशल ने कहा।

"यह भाई मुबारक अली की है। उसमें वह और उनके बच्चे रहते हैं।" इब्राहीम ने दरवाज़े के आगे धूप में बैठे हुए आदमी की ओर संकेत किया।

"ये सब माँग कर खाते हैं?"

"नहीं, मेहनत-मजदूरी भी करते हैं।"

इस सम्बन्ध में कौशल अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता था, लेकिन इसी बीच में उसकी दाईं ओर एक गोरे रंग का आदमी आकर बैठ गया। उसने स्याह रंग का कोट और सिर पर आसमानी रंग की टोपी पहन रखी थी, जो कुछ कीमती जान पड़ती थी। उसने बैठते ही जेब से बीड़ियों का बंडल निकाला और एक बीड़ी कौशल को पेश करनी चाही।

"मेहरबानी, मैं तो पिया नहीं करता।" कौशल ने उत्तर दिया।

"सिगरेट पीते हो, तो सिगरेट ला दूँ?" उसने बड़ी नम्रता और सहृदयता से पूछा।

"नहीं, मैं तो तम्बाकू पीता ही नहीं।"

कौशल के इन्कार करने पर उसने खुद बीड़ी सुलगाई और पीने लगा। वह बाईस-तेईस साल का नौजवान था। देखने में बहुत ही सीधा और सरल स्वभाव का मालूम होता था। उसका रंग चिट्टा और आँखें छोटी-छोटी थीं।

"तुम भी क्या यहीं रहते हो?" कौशल ने दरियाफ़्त किया।

उत्तर में उसने बताया कि वह गाजियाबाद के समीप एक गाँव में रहता है, वहाँ उसके घर वाले खेती बाड़ी करते हैं, दिल्ली में चार-पाँच रोज़ के लिए घूमने आया है और यहाँ अस्थायी रूप से ठहरा हुआ है।

"तो यहाँ क्यों ठहरे, कोई और जगह नहीं थी?"

"हम भी फ़कीर हैं, ये लोग भी फ़कीर हैं। अपनी बिरादरी के लोग

। मैं तो जब कभी दिल्ली आता हूँ, यहीं ठहरता हूँ।"

कौशल चुपचाप इस नौजवान की ओर देखने लगा और उसकी ओर उन लोगों की स्थिति पर विचार करने लगा।

बिरादरी के सम्बन्ध जैसे मूर्तिमान होकर उसके सामने आ खड़े हुए हों। सदियाँ गुजर जाने पर भी वे इतने सुदृढ़ और सबल थे कि आदमी के स्वयं टूट जाने पर भी नहीं टूटते थे।

"हाँ, हाँ! बेटी के यार, तुम खाओ; मैं नहीं खाऊँगी, तुम खाओ!"

इब्राहीम के साथ जो औरत खाना खा रही थी, वह सहसा तीव्र और कटु स्वर में चीख उठी, और अपने हाथ का कौर फेंककर पीछे को हट गई।

"क्या बात है ?" कौशल ने दरियाफ़्त किया।

"यह गोश्त नहीं खातीं, और बड़े मियाँ ने सब्जी में शोरवा मिला दिया है।" इब्राहीम ने उत्तर दिया।

"लो, यह तुम्हारी सब्जी अलग पड़ी है। तुम इस के साथ खाओ।"

बड़े मियाँ ने इत्मीनान से कहा और औरत फिर खाने में शरीक हो गई। समीप ही एक डोल पानी से भरा पड़ा था। तीनों जने एक टी के डिब्बे द्वारा उसमें से आवश्यकता के अनुसार पानी पी रहे थे।

"क्या कहा इन्होंने ?"

"खाना माँगती हैं।"

"आओ, बड़ी खुशी से खाओ। हम तो ऐसे आदमी को अपने खिलाने की तमन्ना रखते हैं।"

थोड़ी दूर पर फ़क़ीरों का एक पंजाबी परिवार ठहरा हुआ जिसमें दो मर्द, दो औरतें, एक लड़की, दो लड़के और एक दूधपीता था। औरतों में से एक की अवस्था ढल चुकी थी, दूसरी जवान दोनों काफी सुन्दर थीं। ये लोग भी किसी दूसरे नगर में रहते कारोबार करते थे, इस मैदान में कुछेक दिन के लिए मेहमान

इस समय जवान औरत बड़ी औरत से खाना माँग रही थी। इब्राहीम की आँखें और कान जैसे सारा समय उसी ओर लगे रहे हों और वह चुपके-चुपके जवान औरत के सुन्दर शरीर की मादकता का रस-पान करता रहा हो, तनिक अवसर मिलते ही बोल उठा और अपने मन का भाव व्यक्त किया।

कब्रों के निकट जो झोंपड़ियाँ थीं, उस ओर एक लम्बा, मोटा और तगड़ा व्यक्ति झोंपड़ियों के आगे वाले ढलवान पर छिड़काव कर रहा था, ताकि रेत उड़कर भीतर न आये। कलीमअल्लाह शाह के मज़ार के पास नल लगा हुआ था। वह वहीं से पानी ला रहा था और डोल फेंकते समय ज़ोर से चिल्लाता था—"अनहक !" और उसकी भारी-भरकम आवाज़ हवा में गूंज उठती थी। लगता था कि वह अपने इस सेवा-कार्य से आनन्द का अनुभव कर रहा है और दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है, लेकिन कौशल के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति उस ओर ध्यान नहीं दे रहा था। कारण, वे सब उसकी विचित्र ध्वनि और हाव-भाव से इतने परिचित हो चुके थे कि उसमें अब कुछ विशेषता नहीं रह गई थी। लेकिन वह अपना काम पूरी तन्मयता से किये जा रहा था। लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ इधर-उधर दौड़ रहा था और पानी छिड़क रहा था, और अपने काम में ऐसा हर्षित और आनन्दित जान पड़ता था जैसे उन्मत्त भैंसा अपने खुरों और सींगों से धरती कुरेद रहा हो, उसे किसी के देखने-न-देखने की कुछ भी परवा न हो, धरती कुरेदना और धूल उड़ाना उसके उन्माद का तक़ाज़ा है।

उसका नाम बुंदे साईं था।

कौशल कुछ देर बैठा यह समस्त दृश्य देखता रहा। फिर धूप चुभने लगी तो उठकर इधर-उधर टहलना शुरू किया।

कलीमअल्लाह के मज़ार के पास एक और छोटी-सी कब्र थी और इब्राहीम के कथनानुसार उसमें कलीमअल्लाह शाह के पिता दफनाये गये थे। वे भी बड़ी करनी वाले फकीर थे; लेकिन कलंदरी में जो उच्चपद

कलीमअल्लाह शाह को प्राप्त हुआ, वह उनके पिता नूर अल्लाह शाह को प्राप्त न हो सका। शायद इस फ़कीरी के अनुपात ही से उनकी कब्र छोटी और संक्षिप्त थी। जो लोग कलीमअल्लाह शाह के मज़ार की ज़ियारत (दर्शन करने) को आते थे, वे दो-चार फूल उस पर भी चढ़ा जाते थे।

वहां अब एक खोमचे वाला बैठा था और चन्द नौजवान, जो यों ही घूमते-घामते उधर आ निकले थे, उससे मूंगफली खरीदकर खा रहे थे। कौशल दो-चार मिनट के लिए वहां ठहर गया। मगर इन लोगों की बातों में उसे कोई दिलचस्पी महसूस नहीं हुई, इसलिए वह आगे चल पड़ा और जामुन के उस बड़े वृक्ष के नीचे आया, जिसके टहने पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में फैले हुए थे और जिसके नीचे फ़कीरों की प्रायः एक दूसरी बस्ती आबाद थी।

५

इस बस्ती के बीच में कलंदर साईं की धूनी थी। धूनी की आग इस समय बुझी हुई थी। लेकिन कलंदर साईं अपना डेरा जमाए हुए थे और उनके इर्द-गिर्द चार-पाँच व्यक्ति और बैठे थे। कलंदर साईं ने सिर पर एक मैला-सा रूमाल बांध रखा था, जिसमें लम्बे बाल छिप गए थे; कानों में बड़ी-बड़ी मुंदरें थीं; गले में चमकदार दानों की तसबीह (माला) थी, जिसमें लाल, पीले और नीले कई रंग थे; और दायें बाज़ू में लोहे के कड़े थे, जो फ़कीर लोग आमतौर पर पहने रहते हैं। इस समय वह एक तावीज़ बनाने में व्यस्त थे और उसके कोनों को रेती से रगड़ रहे थे।

"क्या चाहिए ?" कलंदर साईं ने बिना सिर ऊपर उठाये कौशल से फ़कीरों के अन्दाज़ में पूछा, जैसे वह भी कोई नया मुरीद हो।

"कुछ नहीं, आप का करतब देख रहा हूँ।"

"हमारा करतब क्या देखोगे मियाँ! करतब दिखाने के दिन ही चले गये।" साईं ने कहा और वह तावीज़ के दोनों कोने ज़ोर-ज़ोर से

कलीमअल्लाह शाह को प्राप्त हुआ, वह उनके पिता नूर अल्लाह शाह को प्राप्त न हो सका। शायद इस फ़कीरी के अनुपात ही से उनकी कब्र छोटी और संक्षिप्त थी। जो लोग कलीमअल्लाह शाह के मज़ार की ज़ियारत (दर्शन करने) को आते थे, वे दो-चार फूल उस पर भी चढ़ा जाते थे।

वहाँ अब एक खोमचे वाला बैठा था और चन्द नौजवान, जो यों ही घूमने-घामते उधर आ निकले थे, उससे मूँगफली ख़रीदकर खा रहे थे। कौशल दो-चार मिनट के लिए वहाँ ठहर गया। मगर इन लोगों की बातों में उसे कोई दिलचस्पी महसूस नहीं हुई, इसलिए वह आगे चल पड़ा और जामुन के उस बड़े वृक्ष के नीचे आया, जिसके टहने पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण में फैले हुए थे और जिसके नीचे फ़कीरों की प्रायः एक दूसरी बस्ती आबाद थी।

५

इस बस्ती के बीच में कलंदर साईं की धूनी थी। धूनी की आग इस समय बुझी हुई थी। लेकिन कलंदर साईं अपना डेरा जमाए हुए थे और उनके इर्द-गिर्द चार-पाँच व्यक्ति और बैठे थे। कलंदर साईं ने सिर पर एक मैला-सा रूमाल बाँध रखा था, जिसमें लम्बे बाल छिप गए थे; कानों में बड़ी-बड़ी मुंदरें थीं; गले में चमकदार दानों की तसबीह (माला) थी, जिसमें लाल, पीले और नीले कई रंग थे; और दायें बाजू में लोहे के कड़े थे, जो फ़कीर लोग आमतौर पर पहने रहते हैं। इस समय वह एक तावीज़ बनाने में व्यस्त थे और उसके कोनों को रेती से रगड़ रहे थे।

"क्या चाहिए ?" कलंदर साईं ने बिना सिर ऊपर उठाये कौशल से फ़कीरों के अन्दाज़ में पूछा, जैसे वह भी कोई नया मुरीद हो।

"कुछ नहीं, आप का करतब देख रहा हूँ।"

"हमारा करतब क्या देखोगे मियाँ ! करतब दिखाने के दिन ही चले गये।" साईं ने कहा और वह तावीज़ के दोनों कोने ज़ोर-ज़ोर से

रेतने लगा।

"यह तावीज़ किस चीज़ का है ?" कौशल ने पूछा।

"सीप का," पास बैठे एक व्यक्ति ने उत्तर दिया।

"बस, अब कोने रेत कर तैयार हो जायगा ?"

वहाँ जितने लोग बैठे थे, सबने कौशल को एक साथ आश्चर्ययुक्त दृष्टि से देखा, लेकिन कलंदर साईं ने निगाह ऊपर उठाये बिना ही कहा—"नहीं, इसके बाद इस पर कलमा लिखेंगे और कपड़े में मढ़कर सी देंगे।"

"फिर क्या कीजियेगा ?"

कलंदर साईं ने इस बार निगाहें ऊपर उठाकर कौशल की ओर देखा। होंठों पर से मूँछें तरशी हुई थी और भवें लम्बी लम्बी थी। एक निगाह देख लेने के उपरान्त वे फिर अपने काम में व्यस्त हो गये और बोले—

"बेच आयेंगे।"

"अच्छा आप तावीज बेचते हैं। एक तावीज की क्या कीमत है ?"

"दस आने।"

कौशल को उन लोगों का ध्यान आया, जो ये तावीज खरीदते थे। वे शहर की गलियों और मुहल्लों में भरे पड़े थे। दिन-रात काम करते थे, फिर भी उनकी अभिलाषाएँ अधूरी रह जाती थी। कोई दफ्तर में तरक्की चाहता था, किसी को बच्चे की और किसी को ब्याह की अभिलाषा थी। कुछेक को भूत-प्रेत सताते थे और उन्हें अँधेरे में बाहर निकलते डर लगता था। डर और भय उनके जीवन का अविच्छिन्न अंग बन चुका था। कलंदर साईं का तावीज उनके इस भय [illegible] करने का कारण बनता था; उनकी अभिलाषा-पूर्ति में योग देता और वे इसे बड़े चाव से खरीदते थे।

कलंदर साईं ने निचला होंठ दाँतोंतले दबा रखा था और [illegible] मुस्तैदी से तावीज के किनारे रेत रहे थे। आस-पास बैठे लोग [illegible]

फैला रखा था और उसे एकटक देख रहा था—देख रहा था, आँखों में अतुल साध और चिन्ता के मिश्रित भाव भरे हुए थे। वह तहमद को कई बार सी चुका था। टाँकों के अलावा कई स्थान पर पैवन्द लगे हुए थे। झुनिया को अपनी ओर ध्यानस्थ देखकर बोला, "अब तो इस में जान नहीं रही; दो साल से पहन रहा हूँ।"

मर्द का चेहरा बुझा-बुझा और उदास-उदास था, जैसे उसकी रूह में इस तहमद के सदृश बहुत से पैवन्द और टाँके लगे हुए हों; जैसे उसमें भी बहुत कम जान रह गई हो। लेकिन औरत के शरीर में अभी काफी जान थी। हाथ काँपते थे; टाँगें लड़खड़ाती थीं; मुँह से राल टपकती थी—ऐसा मालूम होता था कि सारा शरीर रोग-ग्रस्त है। उसे झोला मार गया था। फिर भी उसकी आँखों में अमिट उल्लास भरा आ था, जो निस्संदेह जीवन-प्रतीक था। मुस्कराहट उसके होंठों से कभी अलग नहीं होती थी—"इसे फिर सीकर क्या करोगे?" उसने पति से कहा और तहमद के प्रति क्षा भाव प्रकट करते हुए अपनी मुस्कराहटों में खो गई।

६

वृक्ष के दक्षिण-पश्चिमी कोने पर एक और परिवार बसता था—एक औरत, दो मर्द और एक लड़का। उनका सामान वृक्ष की जड़ में रखा हुआ था और यहीं उनका डेरा था। लेकिन इस समय उन्होंने तनिक आगे बढ़कर दरी बिछाली थी और सब उस पर बैठे हुए थे। औरत ने टाँगें फैला रखी थीं और लड़का उकड़ूँ बैठा था। मर्द एक अधेड़ उम्र और दूसरा नौजवान था। नौजवान दरी पर और अधेड़ उम्र तनिक परे धरती पर बैठा था। नौजवान के कपड़े अपेक्षाकृत सुथरे थे। उसने कमीज़ के ऊपर कोट भी पहन रखा था और उस पर एक फूल टंका हुआ था; सिर पर अंगोछा था और हाथ की अँगुलियों में तीन-चार अँगूठियाँ पहन रखी थीं। वह सिगरेट की खाली डिब्बियों से खिलौने बना रहा था। इसलिए खाली डिब्बियाँ, रंग-बिरंगे कागज़ और लेई पास रखी थी। पाँच-छः डिब्बियों को जोड़कर एक खिलौना तैयार होता था और रंग-

दार कागज उन में इस प्रकार चिपकाये जाते थे कि खिलौने के खोलने से एक साथ बहुत से रंग आँखों के सामने खुल जाते थे। एक सिरे से खोलने पर रंगों का जो क्रम होता था, दूसरे सिरे से पकड़कर खोलने से वह बदल जाता था और देखने में उसका प्रभाव पहले प्रभाव से बिलकुल भिन्न होता था। वह दिनभर ये खिलौने बनाता था और शाम को गली-मुहल्लों में बेच आता था।

"ज़रा परे, परे!"

कौशल भुनिया को भुनभुनाते छोड़कर इधर चला आया था। उसे अपनी ओर बढ़ते देखकर खिलौने बनाने वाले नौजवान ने उसे दूर ही रुक जाने को कहा, जैसे वह उसके सामने पड़े हुए कागज़ों पर चढ़ आयगा और उन्हें रौंद डालेगा।

"घबराइये मत।" कौशल ने नम्रता से कहा, "कोई चीज़ खराब नहीं करूँगा। मैं सिर्फ़ आप लोगों को देखना चाहता हूँ।"

औरत क्षितिज पर आँखें जमाये बैठी थी। अब उसने नज़र घुमाकर कौशल की ओर देखा और एक क्षण चुपचाप देखती रही। उसके होंठ आवश्यकता से अधिक भिंचे हुए थे, जैसे उसे उन्हें भींच रखने का एहसास हो। उसका रंग काला था, लेकिन होंठ लाल थे। यह पान की लाली नहीं थी, लगातार भिंचे रहने से ही लाल हो गये थे। कौशल को सिर से पाँव तक देख लेने के बाद वह मजी हुई तेज़ आवाज़ में बोली—

"हाँ देखो, देखो, खूब देखो।" सिर्फ़ होंठ ही नहीं, बोलते हुए उसका तमाम चेहरा हिल रहा था। उसने अपनी छाती पर हाथ रखकर कहा, "यह मैं हूँ; यह मेरा लड़का है, यह देवर है और वह मेरा खाविंद है।" उसने एक साँस में यह सारा परिचय करा दिया और चुप हो गई। उसने एक साधारण-सी कमीज़ पहन रखी थी, जिसके बटन खुले हुए थे। सहसा एक जूँ सरसराई, जिसे पकड़ने के लिए उसने बगल में हाथ डाला, लेकिन सफलता नहीं मिली। उसने जब हाथ बाहर निकाला और उसे आँखों के निकट ले जाकर देखा, उस में जूँ के बजाय कमीज़ से टूटा हुआ तनिक-

से गुज़र गये । न उन्होंने इन लोगों की ओर देखा और न मरीयम और अमीर अली ने उनकी ओर जैसे, वे एक दूसरे के लिए बिल्कुल बेगाने हों और अलग-अलग दुनियाँ के वासी हों ।

७

मैदान के बीचोंबीच एक पगडंडी गुज़रती है । यद्यपि यह पगडंडी सड़क की भाँति मुतवातर नहीं चलती, लेकिन गाहे-गाहे लोग आते जाते रहते हैं । यह कोई नियमित मार्ग नहीं । चाँदनी चौक से लाल क़िला और दरियागंज की ओर आने-जाने वाले लोगों ने इसे अपनी मर्ज़ी से बना लिया है क्योंकि इस प्रकार उन्हें फ़ासला कम तय करना पड़ता है ।

वैसे परेड ग्राउंड के चारों ओर पत्थर के खम्भे गाड़कर तार लगा दी गई है और सरकारी तौर पर बीच में से गुज़रने की मनाही है; लेकिन सिर्फ़ मनाही कर देने से क्या होता है ? जहाँ जनता के मन में क़ानून का आदर और सम्मान न हो और जहाँ क़ानून उन्हें चूसने और दबाये रखने के लिए ही बनते हों, वहाँ क़ानून के तनिक ढीला और कमज़ोर होते ही लोग उसे झट तोड़ देते हैं और उसे तोड़कर उन्हें संतोष प्राप्त होता है । और यह भी सच है कि लोग जब कोई काम करने पर आते हैं तो वे किसी क़ानून की परवा नहीं करते । पहले-पहल शायद उन्हें कुछ दिक्क़त हुई हो; लेकिन अब यह पगडंडी उनके क़दमों से इतनी परिचित हो चुकी है कि सारे मैदान से अलग पहचानी जा सकती है और जन-मार्ग का रूप धारण कर चुकी है । अब खुद क़ानून भी उसे मैदान का भाग बना देने में असमर्थ है ।

इस पगडंडी के दोनों सिरों पर न कोई खम्भा दिखाई देता था और न तार । काफ़ी दूर तक जगह ऐसे खुली पड़ी थी, जैसे वहाँ खम्भे कभी लगाये ही न गये हों । इस पगडंडी के अतिरिक्त भी लोग कई स्थान से मैदान को पार करते हैं, कहीं तारों के बीच में से और कहीं ऊपर से गुज़र जाते हैं । वे क़ानून की अपेक्षा अपनी सुविधा का अधिक ध्यान

रखते हैं। एक-दो स्थान पर तो उन्होंने कच्चे रास्तों पर गिराकर उन्हें नालों पर से गुज़रने की सीढ़ी बना लिया है। उन्हें वहाँ गुज़रते देखकर मस्तिष्क में विचार आता है कि जनसाधारण की सामूहिक बुद्धि भी विचित्र कौशल से सम्पन्न होती है; उसे अपनी आवश्यकतानुसार मार्ग बनाना ख़ूब आता है।

मैदान की उम्र बहुत लम्बी है। अंग्रेज़ और मुग़ल राज्य की तो बात ही क्या, वह कौरव और पाण्डव राज्य से भी पुराना है। यदि उसके वर्तमान रूप को लिया जाय तो जिस समय जामा मस्जिद और लाल क़िले का निर्माण हुआ था, उसी समय इस मैदान का नक़्शा भी बना होगा। मुग़ल सैनिकों के घोड़ों के खुर उसने अपनी छाती पर सहे हैं; नादिरशाह का क़त्लेआम उसने अपनी आँखों से देखा है और अहमदशाह अब्दाली की आक्रमणकारी सेना ने उसे भी बरबस रौंदा है। उसका नाम 'परेड ग्राउंड' तो निश्चित रूप से अंग्रेज़ों ही ने रखा है। कहते हैं कि युद्ध से पहले अंग्रेज़ी सेना का अभ्यास प्रत्येक वर्ष इस मैदान में होता था जिसका अभिप्राय विदेशी साम्राज्य की शक्ति और प्रभुत्व का प्रदर्शन मात्र था। इस शक्ति और प्रभुत्व का सबसे बड़ा प्रदर्शन सन् १९११ में हुआ था जब विदेशी साम्राज्य ने कलकत्ता के बजाय दिल्ली को अपनी राजधानी बनाया था। उस समय इस मैदान में बड़ी धूम-धाम थी। वे अंग्रेज़ी साम्राज्य-शक्ति की चरम सीमा के दिन थे। मैदान बर्बर शक्ति के इस प्रदर्शन पर मन-ही-मन में मुस्कराया था। उसने कितने ही राज्यों और साम्राज्यों के उत्थान और पतन देखे हैं। दोपहर के उपरान्त दिन ढल जाता है। यहीं से अंग्रेज़ी साम्राज्य का सूर्य भी ढलना आरम्भ हुआ और कुछ ही काल में सायंकाल आ पहुँचा। जिस प्रकार अस्तप्राय सूर्य वृक्षों और मकानों की आड़ से अपनी तेजहीन किरणें मैदान पर डालता रहता है, उसी प्रकार ह्रासोन्मुख अंग्रेज़ी साम्राज्य अब देशी शासकों की आड़ से अपनी कुटिल नीति के जर्जर पर्दे मैदान पर फैलाये हुए हैं। इन पर्दों की सिकुड़न अब

काफ़ी कड़ी है। मैदान इस गिरफ़्त से आहत और ... दुःख-दर्द से
हजारों बेघर, बेकार, निर्धन और विवश इंसानों के ...
ने सीने में छिपाए खामोश पड़ा है।

साम्राज्य बनते और बिगड़ते रहे हैं; बर्बर शक्ति का प्रदर्शन करने
ले मृत्यु का ग्रास बनते रहे हैं; लेकिन यह मैदान अमर है और उसकी
द में परवरिश पाने वाली जनता अमर है। उसमें एक स्वाभाविक
और स्थायी सम्बन्ध स्थापित है। मैदान सोचता है कि ये लोग उसके पास
अपने दुःख-दर्द और सर्द आहें लेकर न आयें; वे उसके पास हँसते, खेलते
और गाते हुए आयें, यहाँ आकर विजय-उल्लास में विभोर जनशक्ति
का जश्न मनायें, जिस प्रकार उनका शोषण करने वाले साम्राज्यों के
वाली कभी-कभार मनाते रहे हैं।

लेकिन जब तक लोकराज्य स्थापित न हो जाय, लोग जश्न कैसे
मना सकते हैं? उनके हिस्से में तो एक मात्र दुःख-दर्द ही आयेंगे, जिन्हें
लेकर वे मैदान के पास आते रहेंगे और उसे कल्याणकारी भविष्य के
बात सोचने पर मजबूर करते रहेंगे। दुःख की कोख से सोच और
चिन्ता जन्म लेती है।

हाँ, दुःख की कोख से चिन्ता जन्म लेती है या विचार। लेकिन
जब मनुष्य के भाग्य में दुःख-ही-दुःख हो और दुःख की मात्रा उसकी
सहन-शक्ति से अधिक हो तो वह उसे सोच से वंचित करके अचेतन
और जड़ भी बना देता है। मगर संसार में कोई शै नष्ट नहीं होती।
मनुष्य जो सोच खो देता है, वह इस मैदान का एक अविच्छेद्य अंग बन
जाती है और उसके अनगिनत परमाणुओं को जीवन प्रदान करती है।
और यह समूचा मैदान—उसका कण-कण मनुष्य के लिए सोचने का
काम कर रहा है।

कौशल जब निस्तब्ध रातों में बैठकर सोचता है, तो उसे सचमुच
मैदान में जीवन का आभास होता है। वह मैदान की आत्मा को, उसके
प्राणों को बोलते और सरगोशियों में बातें करते हुए सुनने लगता है।

इस समय भी रात निस्तब्ध थी। प्रत्येक वस्तु अचल और मूक थी। सिर्फ सड़क पर से कभी-कभी कोई मोटर गुजर जाती थी। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। इधर-उधर से सड़क के खम्भों और जामा मसजिद के बल्वों का प्रकाश मैदान को कुछ-कुछ आलोकित कर रहा था। सामने लाल किले पर भी नन्ही-नन्ही दो सुर्ख बत्तियाँ रोशन थीं। लेकिन वे बहुत दूर थीं, इसलिए मैदान को आलोकित करने में उनका भाग बहुत ही मामूली और नगण्य था। हो सकता है कि कभी ये बत्तियाँ आकार में बड़ी हो जायें और उनके प्रकाश से सारा मैदान जगमगा उठे और उसमें फैले हुए कुहासे और अंधेरे का सदा के लिए अंत हो जाय।

मैदान लम्बाई-चौड़ाई में दूर तक फैला हुआ है—सड़क से परे फैलता चला गया है। जितना यह मैदान विस्तृत है, उतनी ही उसकी आत्मा विशाल और उदार है। कई बार इस धुँधले वातावरण में मैदान की यह आत्मा धरती के वक्ष-स्थल से ऊपर उठती है और साकार हो जाती है। कौशल उसे देखता है, उसकी सरगोशियाँ सुनता है। फिर यह विशाल आत्मा एकाएक बहुत-सी आत्माओं में विभाजित हो जाती है। ये आत्माएं मैदान के वासियों की आत्माएं हैं—कोई वृद्ध, कोई जवान। कौशल इन आत्माओं में कुछेक को पहचानता है। उनसे वह भली प्रकार परिचित है। रफ्ता-रफ्ता ये जानी-बूझी और परिचित आत्माएं ही कौशल के सामने रह जाती हैं, बाकी फिज़ा में लोप हो जाती हैं। ये आत्माएं निर्भय और सकोचरहित कौशल के इतने निकट आ जाती हैं कि वह उनकी सांसों की उष्णता महसूस करने लगता है और फिर मूक भाषा में उनकी बातें सुनने लगता है। ये बातें उनके दुःख-दर्द की कभी न खत्म होने वाली कहानियाँ होती हैं। कहानियों के पात्र मिट जाते हैं, पर कहानियाँ अमर हो जाती हैं।

ये उन लोगों की आत्माएं हैं, जो जीवन-संघर्ष में परास्त होकर मैदान की पनाह में आते हैं। यह हमारे जर्जर समाज का एक चौथा

वर्ग है—पक्षाघातग्रस्त अंग ! लेकिन पक्षाघात ने उसे निर्जीव और जड़ नहीं बना दिया। उसमें जीवन है और जीने की अभिलाषा है। और उसके रोग का निदान प्राप्य है।

८

पगडंडी के इस पार भी लोग बसते थे। जामुन के उस घने वृक्ष के सामने पगडंडी के इस पार भी एक वृक्ष था; लेकिन यह वृक्ष अपेक्षाकृत बहुत ही छोटा, सूना और निर्जन था। यहाँ कभी-कभी कोई इक्का-दुक्का फ़क़ीर आ बैठता था और एक-दो रात गुज़ारकर चला जाता था। इस वृक्ष से थोड़ी दूर पर अलबत्ता एक मियाँ-बीबी का जोड़ा रहता था। वे रात को बरसाती तानकर झोंपड़ी बना लेते थे और अपने आप को जाड़े और वायु से सुरक्षित कर लेते थे; लेकिन दिन को बरसाती उतारकर अलग कर देते थे और धूप का सेवन करते थे। वे पगडंडी के उस पार बसने वाले प्राणियों को शायद अपने से हीन समझते थे, इसलिए उनसे मिलते-जुलते नहीं थे। कौशल दो-चार बार उनके समीप जाकर खड़ा हुआ; लेकिन उन्हें किसी प्रकार की बातचीत करते नहीं सुना। उन्होंने कौशल की ओर भी कोई ध्यान नहीं दिया। वे बस अपने ही आप में मस्त जान पड़ते थे। एक चूल्हा-सा बना रखा था, जिसमें हर वक्त आग जलती रहती थी। मर्द उस आग में कुछ जलाने और पिघलाने में व्यस्त रहता था। कभी वह जड़ी-बूटियाँ और धातुएँ भस्म करके कुश्ते बनाता था और कभी-कभी तांबे से सोना बनाने का प्रयत्न किया करता था।

कुश्ते और सोना बनाने वाले ढोंगी, धूर्त और जालसाज़ होते हैं। कौशल ने ऐसे व्यक्तियों को कभी पसंद नहीं किया। इसलिए यह मालूम होते ही कि वह आदमी कुश्ते तैयार करता है, उसने उसमें किसी प्रकार की दिलचस्पी लेना छोड़ दिया। वह सिर्फ़ पगडंडी के उस पार बसने वालों से ही रब्त-ज़ब्त बढ़ा रहा था। जब वह उनकी बातें सुनता तो ऐसा लगता जैसे मैदान इन लोगों की ज़बानी अपने इतिहास की कहानी

सुना रहा हो। जैसे उनकी सहृदयता और सरलता ने इस इतिहास को जीवित और अमर बना दिया हो।

एक दिन जब वह इस वृक्ष के नीचे आया, तो रफीक और उसकी बीवी की भाँति यहाँ अमीर अली और एक दूसरा फकीर आपस में लड़-झगड़ रहे थे। दस-ग्यारह बजे का समय था। दिसम्बर की सर्द रात थी, वे दोनों अपने-अपने स्थान पर लेटे हुए थे; लेकिन उनके पास ओढ़ने का कपड़ा पर्याप्त नहीं था, इसलिए उन्हें नींद नहीं आ रही थी और चुपचाप पड़े रहना कुछ अखरता भी था, चुनाचे वे लड़ रहे थे। फेफड़ों की समस्त शक्ति से दोनों एक दूसरे पर गाली-प्रहार कर रहे थे। अजीब बात थी कि लड़ाई ने शास्त्रार्थ और विवाद का-सा रूप धारण कर लिया था। एक आदमी अपनी बात कहने के उपरान्त प्रतिद्वन्द्वी को उसका उत्तर देने का पूरा अवसर देता और बीच में बिलकुल नहीं बोलता था। इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर का सिलसिला जारी था। दोनों वीर इस युद्ध-नीति के सख्ती से पाबन्द थे और मुस्तैदी से लड़ रहे थे। जब कौशल वहाँ पहुँचा तो अमीर अली अपने प्रतिद्वन्द्वी से कह रहा था—"सूअर का बच्चा, मेरे कुत्ते को मारता है। इस बेज़बान पर जोर चलाता है। किसी मर्द को हाथ लगाये तो हाथ तोड़ दें।"

"हराम के तुख्म!" उधर से प्रहार हुआ, "देखा है मुझे मारते या यों ही फुन-फुन फुन-फुन लगा रखी है। बड़ा योधा बना फिरता है, हाथ तोड़ने वाला!"

"योधा तो मैं हूँ!" अमीर अली ने तड़पकर कहा, "यह तो कलंदर मियाँ का लिहाज़ है जिसने तुझे यहाँ जगह दे दी, वरना इतने जूते मारूँ कि मारते-मारते हैसियत बिगाड़ दूँ।"

कौशल को हैसियत बिगाड़ने की बात सुनकर मन-ही-मन में हँसी आई। वह कुछ देर खड़ा उनके युद्ध-कौशल और वाक्य-विन्यास की दाद देता रहा और फिर बिना किसी को अपने आने की इत्तला दिए

दवे पाँव लौट आया।

अमीर अली से लड़ने वाला यह दूसरा फ़कीर अब्दुल समद था; लम्बे क़द का भीमकाय व्यक्ति, दो-चार दिन पहले यहाँ आया था; शिगरफ़ आदि पीसकर दाँतों का मंजन तैयार करता था और भिन्न भिन्न नगरों और शहरों में घूमकर उसे वेचा करता था। दिल्ली वड़ शहर है; इसलिए यहाँ वहुत ठहरना होता था। सुबह-शाम वह इस वृक्ष के नीचे वैठा मिलता और दिनभर घूम-फिरकर मंजन वेचा करत था। वह अच्छे स्वभाव का विनोदशील व्यक्ति था। जव शिगरफ़ औ दूसरी चीजें रगड़ते-रगड़ते तनिक थक जाता, तो झुनिया से एक आध मज़ाक करता अथवा अपने साथी को निजी अनुभव की कोई बा सुनाता। अब्दुल समद का यह साथी भी विनोदशील व्यक्ति था, उस का एक दूसरा रूप था। वह हमेशा उसके साथ घूमता था और हाँ हाँ मिलाया करता था। वैसे उसका अपना अनुभव भी अब्दुल समद अनुभव से किसी तरह कम नहीं था।

एक दिन रात के नौ-दस वजे होंगे, उर्दू वाज़ार के अंत पर साम जो सिनेमाघर है, उसकी विजलियाँ चमक रहीं थीं और रिकार्ड व रहा था, जिसके वोल यहाँ भी साफ़ सुनाई दे रहे थे—"अफ़साना लि रही हूँ दिले वेक़रार का।......"

अब्दुल समद ने गाने की आलोचना करते हुए अपने साथी से कह "ये पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपने यारों को चिट्ठियाँ लिखकर भेजती हैं।

"और उस दिन मुरादावाद में क्या गाना सुना था, वह भी या है ?" उसके साथी ने कहा और आप ही गाना भी सुना दिया, "तुम्हा पता क्या है, सामने गली में मेरा घर है।" और फिर व्यंग्य भाव हँसते हुए वोला—"पता साफ़ वता जाती हैं।"

"पढ़ाई ने और इस सिनेमा ने शहर की लौंडियों को तो विलकु चौपट कर दिया।"

"वक्त-वक्त की वात है, कभी वुर्क़े से वाहर निकलना भी गुना

समझा जाता था और कहाँ अब मुसलमानो की लड़कियाँ भी खुले मुँह घूमती हैं और नाचती-गाती हैं। दुनिया से शर्म और हया तो समझो उठती ही जा रही है।"

अब्दुल समद हँस पडा। उसकी हँसी मे व्यग था, क्षोभ नही था। यह शुद्ध और स्वच्छ हँसी थी, जो जीवन का बोझ हल्का करने के लिए हँसी जाती है। बात करने का एकमात्र उद्देश्य हँसना ही होता था। उसका बात करने का भी ढग भी विचित्र था। वह शब्दो को घोट-घोटकर मुँह से निकाला करता था। समय काटने और बात चलाने के लिए कोई विषय होना चाहिए। सिनेमा के गानो ने यह नया विषय जुटा दिया था; पर इस बारे में उनका ज्ञान बहुत सीमित था, इसलिए यह सिलसिला आगे न चल सका और सयोगवश उन्हें कलदर शाह के रवैये पर आलोचना करने का अवसर मिल गया।

बात कुछ इस तरह थी। मरीयम का पति अथवा नूरे का अब्बा आग जलाकर चाय तैयार कर रहा था। अमीर अली पास बैठा खाली बरतन ठनठना रहा था और उसकी तान पर एक छंद-मुक्त और मनगढंत पद अलाप रहा था—"हम चाय के साथ खिचडी खायेंगे जी"। स्वर ताल के साथ-साथ उसका सिर भी हिल रहा था, जैसे हाल आया हो और वज्द में झूम रहा हो।

"बड़े मियाँ!" कलदर शाह ने आवाज दी।

"क्या हुक्म है शाह साहब ?" नूरे के अब्बा ने उत्तर दिया।

"जरा आठ आने का कश तो ले आओ, एक चिलम हो पी लें।"

"आप देखते है, इस वक्त तो मैं अपना खाना वगैरह तैयार करने में मसरूफ हूँ।" नूरे के अब्बा ने रुखाई और उपेक्षा से उत्तर दिया और तनिक ठहरकर फिर बोला—"किसी दूसरे वक्त भी मैं आप के मुँह को ले आता हूँ, वरना किसी का नौकर नही हूँ।"

"देखा! आज कही आठ आने के पैसे बन गये होगें और जब तक उन्हें फूँक नही लेगा, उसे चैन नही आयेगा। सच कहा है कि खुदा

कमीनें को धन न दे। धन उसकी जान का लागू बन जाता है।" अब्दुल समद ने आलोचना शुरू की। उसने एक ही स्वर में बहुत कुछ कह डाला और इस स्वर में जिस महाकाव्य की रचना हुई, उसका अंतिम पद यह था—"मेरे बस में हो, तो ख़ुदा की क़सम, ऐसे आदमी का सिर उतार लूँ।"

चूंकि उसके वश में कुछ नहीं था; इसलिए कहने को बात कही और अपनी चादर तानकर सो गया।

मैदान क़िसी की इज़ारादारी नहीं। लोग आते हैं, इच्छानुसार वहाँ रहते हैं और चले जाते हैं। एक दिन कुछ नये चेहरे देखकर अब्दुल समद के साथी ने कहा—"ये लोग इधर नये आये हैं, पहले कभी नहीं देखे।"

"जितने दिन कारोबार चलता है, रहने को घर होता है, कोई इधर नहीं देखता। लेकिन जब कुछ नहीं रहता तो लोग यहाँ आ जाते हैं।" पास से एक अधेड़ उम्र के दाढ़ी वाले फ़क़ीर ने कहा और वह उन्हें तेज़-तेज़ निगाहों से देखने लगा।

"यह परेड ग्राउंड" अब्दुल समद ने होंठ भींचकर और धरती पर ज़ोर से हाथ पटकते हुए कहा—"मुहताजों और दुखियों की पनाहगाह है।" उसकी निगाहें मैदानकी विस्तृतता में दूर तक फैल गई, जैसे वह मैदान की उदारता और दयालुता पर गर्व कर रहा हो।

९

पगडंडी के इस पार जो छोटा और पुराना वृक्ष था, उसके नीचे कुछ दिनों से एक बूढ़ा फ़क़ीर पड़ा था। उसके अंग शिथिल हो गये थे और शरीर सूख गया था। वह बहुत ही वृद्ध था। दाढ़ी और मूछों के तमाम बाल सफ़ेद हो चुके थे और उन पर धूल जमी हुई थी। वह सारा दिन ज़मीन पर पड़ा सिसकता रहता था। उसके पास सिर्फ़ एक फटा-पुराना कम्बल था, जिसे वह सुबह-शाम और रातभर ओढ़े रहता था; जब धूप तेज़ हो जाती थी तो अलग फेंक देता था। इस कम्बल के अतिरिक्त

उसके शरीर पर लगोटी तक नही थी।

एक चाय वाला घूमता-घामता उधर निकल आया। बूढे ने उसे एक प्याला चाय देने को कहा; लेकिन वह उसे अपने गिलास में चाय पिलाने को तैयार नही था इसलिए बूढ़े से पूछा—

"तुम्हारा डिब्बा कहाँ है ?"

"डिब्बा ! डिब्बा !!" बुड्ढे ने दो-तीन बार स्पष्ट स्वर में दोहराया और फटी-फटी आँखो से इधर-उधर देखने लगा। वह निराशा की मूर्ति बना हुआ था।

चाय वाला जाना ही चाहता था कि बडे वृक्ष के नीचे से एक लडका चिल्लाया—"ठहरो, ठहरो ! मै डिब्बा लाता हूँ।"

लड़के ने दो-ढाई गज की धोती और काले रंग की एक वास्केट पहन रखी थी। धोती मुश्किल से उसके घुटनो तक आती थी और वास्केट पर कोई बटन नही था, इसलिए छाती खुली हुई थी। उसके हाथ में पतंग था और उसे उड़ाने के लिए वह डोर सुलझा रहा था। लेकिन अब डोर और पतग वही फेंक दी और डिब्बा उठाकर लपकता हुआ आया—"चाय इस में डाल दो।" लडके का नाम रशीद था। उसने डिब्बा चाय वाले के सामने रख दिया।

चाय वाला चाय मापने लगा और बूढे ने एक कपड़ा रशीद की ओर सरकाकर कहा—'लो पैसे इसे दे दो।"

रशीद ने कपड़े को टटोला, बड़ी सावधानी से देखा और झाड़ा, परन्तु उसे पैसे नजर नहीं आये।

"इसमें पैसे नही है," वह बोला।

"कोई ले गया···" बूढे ने घुटी-घुटी और काँपती हुई आवाज में ले जाने वाले को एक भोंडी गाली दी और सिर भूमि पर टेक दिया।

रशीद ने उसकी ओर दयार्द्र दृष्टि से देखते हुए डिब्बा उठा लिया।

"रहने दो" चायवाला बोला, "यह थोड़ी-सी चाय लो और इसे पिला दो।"

"नही, मेरे अब्बा हैं। इस वक्त भीख माँगने गये हैं।"

"और माँ ?"

"माँ नही है।"

रशीद ने उत्तर दिया। उसकी आँखें स्थिर थी, मुख-मुद्रा और स्वर में भी कोई परिवर्तन नही आया, जैसे माँ का न होना उसके निकट कोई अनहोनी घटना न हो, जैसे वह अनाथ ही उत्पन्न हुआ हो और उसने माँ को कभी देखा ही न हो। माँ नहीं थी और उसके नंगे सिर पर बाल नही थे, ताजे कटवाये मालूम पड़ते थे।

"तुम्हारे अब्बा क्या हमेशा से भीख माँगते हैं ?"

"नही, दंगे से पहले हम लोग करोलबाग में रहते थे और वे दर्जी का काम करते थे।"

"तो अब भी वे दर्जी का काम क्यों नहीं कर लेते ?"

"नही करते, उनकी मर्ज़ी।"

रशीद ने संक्षेप में कहा, मगर इन थोड़े से शब्दों में ही उसके मन का विषाद और क्षोभ प्रकट हो गया। उसके अंदाज़ से लगता था कि वह इस बारे में कुछ भी कहना-सुनना नही चाहता, जैसे उसके सामने दंगों का, हत्याकाण्ड और बर्बरता का चित्र उभर आया हो। यह चित्र बहुत ही भयानक था और वह इस चित्र को अपने मस्तिष्क से मिटाने का सतत प्रयत्न कर रहा था। घर-बार और माँ—किसी बात की चाह उसके मन में नही रह गई थी। उसे सिर्फ खाना और खेलना पसन्द था और खेलने के लिए खुला मैदान सामने पड़ा था और वह दिनभर खेला करता था।

दूसरे दिन कौशल की भेंट रशीद के अब्बा जमाल से हो गई। वह चालीस-बयालीस साल का अधेड़ उम्र का व्यक्ति था। भरे हुए चेहरे पर घनी भयावह दाढ़ी थी, जो झाड़-झंखाड़ों की भाँति उलझी हुई थी, जिसमें मिट्टी-कंकड़ विशेष मात्रा में पड़े रहते थे। कौ[illegible]मान को इससे पहले भी देखा था और अब्दुल समद के साथ

झुनिया के निकट ही घास-फूँस का डेरा था। जमाल ने दो लेले रखे थे जिनमें से एक मादा और एक नर था। उसने मादा का [ना]म शहज़ादी और नर का नाम शहज़ादा रख छोड़ा था। जब कौशल [व]हीं आया, जमाल शहज़ादे को तेल पिला रहा था। शीशी हाथ में लिए धीरे-धीरे तेल उसके नथनों पर उँडेल रहा था और शहज़ादा उसे चाट रहा था। जब वह तेल पी चुका तो जमाल ने उसके जबड़ों को कपड़े से पोंछा, थूथनी पकड़कर उसका मुँह चूमा, पुचकारा और फिर उसके दोनों कानों को पकड़कर उन्हें सिर से ऊपर आपस में मिल[ा] दिया। वह उसे कई मिनट तक प्यार करता और पुचकारता रहा, फिर थपथपाकर अलग करते हुए कहा—"चल जा, अब खेल।"

जमाल ने शहज़ादे को अलग छोड़कर बीड़ी सुलगाई और पीने लगा। वह उकड़ूँ बैठा था और धुआँ यों छोड़ रहा था, जैसे कोई विशेष बात सोच रहा हो; जैसे उसके मन में कोई गूढ़ रहस्य गुदगुदा रहा हो क्योंकि वह सोचते हुए गाहे-गाहे मुस्कराता भी जाता था। मुस्कराहट उसके होंठों पर और आँखों में एकसाथ उत्पन्न होती थी, ऐसा लगता था कि मुस्कराहट उसकी आत्मा से उठ रही है और उसके मन को तरंगित कर रही है।

जमाल के सिर पर एक पिंजरा लटक रहा था; कौशल ने उसकी ओर संकेत करते हुए पूछा—"क्या यह भी आप ही का है ?"

"जी हमारा है; छूइयेगा नहीं; जानवर है, काट खायेगा।"

"क्या जानवर है इसमें ?"

"छिपकली !"

"लेकिन छिपकली तो काटा नहीं करती और वह इसमें कहीं न[ज़र] भी नहीं आती।"

"यह अफ्रीका की छिपकली है, इस कपड़े पर बैठी होगी।"

पिंजड़े में एक कपड़ा बिछा हुआ था। कौशल ने एड़ियाँ उ[ठाकर] देखने का बहुतेरा यत्न किया; पर छिपकली उसे कहीं नज़र नहीं

"यह खाती क्या है ? आपने तो उसके लिए कोई प्याली वगैरह भी नही रखी हुई ।"

"यह बस हवा खाती है ।" जमाल ने कहा और उल्लास में भरकर मुस्करा दिया ।

"खाली हवा ! अजीब छिपकली है ।"

"और आठ अडे हर रोज़ देती है ।"

"नहीं, यह तो मुमकिन नही हो सकता," कौशल बोला ।

"मुमकिन क्यों नहीं ? पूछ लीजिये आपसे । क्यों बड़ी बी ठीक है न ?"

इस वृक्ष की आड में एक छोटी-सी झोपड़ी थी, जिसमें बडी बी रहती थीं । बडी बी उसे जाने क्यो कहा जाता था । देखने से तो पुरुष की ही सम्भावना होती थी । शरीर नगा, सिर पर फ़क़ीरो जैसे लम्बे-लम्बे बाल और जब देखो हाथ में चिलम रहती थी और सुलफे के कश लगते थे । कौशल ने देखा तो उसे कई बार था, लेकिन बोलते आज पहली मर्तबा सुना था ।

"क्या बात ?" बडी बी ने पूछा और जमाल की ओर यों देखा, जैसे उसे किसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या पर फ़ैसला देना हो ।

"यही कि हमारी छिपकली आठ अडे रोज देती है ।"

"हाँ, देती है !" बडी बी ने नि.सकोच समर्थन किया और फिर कहा—"अडा भी इतना-इतना बडा !"

उसने अंडे का जो आकार बनाया था, वह टेनिस खेलने की गेंद से कम क्या होगा और बताने के उपरान्त बडी बी और जमाल दोनों ही विशुद्ध भाव से खिलखिलाकर हँस पड़े ।

कौशल भी हँस पड़ा, हँसी ने उसकी आत्मा को छू लिया था और उस पर एक रहस्य का उद्घाटन हुआ था । जो छिपकली नजर ही नही आती, जो महज़ हवा खाकर जीवित रहती है, वह इतने तो क्या इससे भी बड़े-बड़े अडे दे सकती है । "तब तो साहब खूब है !" कौशल ने

था। झुनिया के निकट ही बाप-बेटे का डेरा था। जमाल ने दो, ऊँट पाल रखे थे, जिनमे से एक मादा और एक नर था। उसने मादा का नाम शहज़ादी और नर का नाम शहज़ादा रख छोड़ा था। जब कौशल वहाँ आया, जमाल शहज़ादे को तेल पिला रहा था। शीशी हाथ में लिए धीरे-धीरे तेल उसके नथनों पर उँडेल रहा था और शहज़ादा उसे चाट रहा था। जब वह तेल पी चुका तो जमाल ने उसके जबड़ों को कपड़े से पूँछा, थूथनी पकड़कर उसका मुँह चूमा, पुचकारा और फिर उसके दोनों कानों को पकड़कर उन्हें सिर से ऊपर आपस में मिला दिया। वह उसे कई मिनट तक प्यार करता और पुचकारता रहा, फिर थपथपाकर अलग करते हुए कहा—"बस जा, अब खेल।"

जमाल ने शहज़ादे को अलग छोड़कर बीड़ी सुलगाई और पीने लगा। वह उकड़ूँ बैठा था और धुआँ यों छोड़ रहा था, जैसे कोई विशेष बात सोच रहा हो; जैसे उसके मन में कोई गूढ़ रहस्य गुदगुदा रहा हो, क्योंकि वह सोचते हुए गाहे-गाहे मुस्कराता भी जाता था। मुस्कराहट उसके होंठों पर और आँखों में एकसाथ उत्पन्न होती थी, ऐसा लगता था कि मुस्कराहट उसकी आत्मा से उठ रही है और उसके मन को तरंगित कर रही है।

जमाल के सिर पर एक पिंजरा लटक रहा था; कौशल ने उसकी ओर संकेत करते हुए पूछा—"क्या यह भी आप ही का है ?"

"जी हमारा है; छुईयेगा नहीं; जानवर है, काट खायेगा।"

"क्या जानवर है इसमें ?"

"छिपकली !"

"लेकिन छिपकली तो काटा नहीं करती और वह इसमें कहीं नज़र भी नहीं आती।"

"यह अफ्रीका की छिपकली है, इस कपड़े पर बैठी होगी।"

पिंजड़े में एक कपड़ा बिछा हुआ था। कौशल ने एड़ियाँ उठाकर देखने का बहुतेरा यत्न किया; पर छिपकली उसे कहीं नज़र नहीं आई।

"यह खाती क्या है ? आपने तो उसके लिए कोई प्याली वगैरह भी नहीं रखी हुई।"

"यह बस हवा खाती है।" जमाल ने कहा और उल्लास में भरकर मुस्करा दिया।

"खाली हवा ! अजीब छिपकली है।"

"और आठ अंडे हर रोज़ देती है।"

"नहीं, यह तो मुमकिन नहीं हो सकता," कौशल बोला।

"मुमकिन क्यों नहीं ? पूछ लीजिये आपसे। क्यों बडी बी ठीक है न ?"

इस वृक्ष की आड़ में एक छोटी-सी झोपडी थी, जिसमें बडी बी रहती थी। बडी बी उसे जाने क्यों कहा जाता था। देखने से तो पुरुष की ही सम्भावना होती थी। शरीर नंगा, सिर पर फकीरों जैसे लम्बे-लम्बे बाल और जब देखो हाथ में चिलम रहती थी और सुलफे के कश लगते थे। कौशल ने देखा तो उसे कई बार था; लेकिन बोलते आज पहली मर्तबा सुना था।

"क्या बात?" बडी बी ने पूछा और जमाल की ओर यों देखा, जैसे उसे किसी बहुत ही महत्त्वपूर्ण समस्या पर फैसला देना हो।

"यही कि हमारी छिपकली आठ अंडे रोज़ देती है।"

"हाँ, देती है।" बडी बी ने निःसकोच समर्थन किया और फिर कहा—"अंडा भी इतना-इतना बडा !"

उसने अंडे का जो आकार बनाया था, वह टेनिस खेलने की गेंद से कम क्या होगा और बताने के उपरान्त बड़ी बी और जमाल दोनो ही विशुद्ध भाव से खिलखिलाकर हँस पड़े।

कौशल भी हँस पडा; हँसी ने उसकी आत्मा को छू लिया था और उस पर एक रहस्य का उद्घाटन हुआ था। जो छिपकली नजर ही नहीं आती, जो महज़ हवा खाकर जीवित रहती है, वह इतने तो क्या इससे भी बड़े-बड़े अंडे दे सकती है। "तब तो साहब खूब है !" कौशल ने

पूरे मनोयोग से उनकी बात की दाद दी।

× × ×

"हूं, चावल का नहीं पता! वही जो ऐसे ठूंसे जाते हैं।"

भुनिया अब्दुल समद के बिस्तर पर बैठी थी। भोजन करते समय जैसे कौर मुंह में डाला जाता है, वैसे हाथ मुंह के निकट ले जाकर उसने यह बात कही थी। उसके होंठ मुस्करा रहे थे और आंखें नाच रही थीं।

बात पहले से चल रही थी। भुनियां का पति वहां उपस्थित नहीं था। अब्दुल समद और उसके साथी को मन बहलाव का अवसर मिला था। वे भुनिया को हाथ मटकाते और आंखें नचाते देखना पसन्द करते थे। बातें यद्यपि निरर्थक ही थीं, लेकिन भुनिया की मुस्कराहटें उन्हें अर्थपूर्ण बना रही थीं।

"बताओ तो चावल कौन से दरख्त पर लगते हैं ?" समद के साथी ने बात का रस लेते हुए पूछा।

"दरख्त पर कहां लगते हैं, बोये जाते हैं।" भुनिया भुनभुनाई और वे दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

"बताओ तो भला कैसे बोये जाते हैं ?"

"ऐसे ही जैसे गन्ना बोया जाता है।" भुनिया ने दृढ़ विश्वास से कहा और आंखों में आत्मसम्मान भरकर बोली, "तुम समझते हो मुझे कुछ पता ही नहीं। हमारे तो खेत होते थे; चावल-गेहूं सब बोते थे। अब यहां कोढ़ियों में आ पड़ी हूं।

'कोढ़ियों में आ पड़ी हूं,' से जो अभाव और व्यथा व्यक्त होती थी, वह भुनिया के मुख पर अंकित नहीं थी; वह अब भी मुस्करा रही थी। अब्दुल समद और उसका साथी भी मुस्करा रहे थे। उन पर भी इन शब्दों का कोई विरोधी प्रभाव नहीं पड़ा था।

"अच्छा, तो फिर हुक्म दिया जाय कि परेड ग्राउंड में इस बार गेहूं बो दिये जायें।" अब्दुल समद ने धरती पर हाथ पटककर कहा और वह हँसने लगा।

वे तीनों मैदान की विस्तृतता में झाँक रहे थे और कौशल सोच रहा था कि भुनिया, अब्दुल समद, उसका साथी जमाल और बड़ी बी सब बुझा-रतें हैं। समय उनकी उपेक्षा करता है, युग-युग से उनका निरादर होता आया है, मगर उन्हें सृष्टि के आरम्भ से बूझे-समझे जाने की तमन्ना है। खेद है कि कोई उन्हें बूझने-समझने का प्रयत्न नहीं करता।' न करे, वे इतिहास के अंग हैं और इतिहास उनका यह निरादर, यह तिरस्कार सहन नहीं कर सकता। उन्हें एक-न-एक दिन जरूर बूझा जायगा।

१०

थोड़ी दूर पर मरीयम अकेली बैठी थी। वह एक मूर्ति के सदृश अचल और स्थिर थी, लेकिन उसकी आँखें क्षितिज पर गड़ी हुई थीं। सहसा वह हरकत में आई और कमीज में हाथ डालकर गर्दन खुजलाने लगी, शायद उसे जूँ ने काटा था। पास ही नूरा गोलियों से खेल रहा था। उसकी आँखें गीड़ से भरी हुई थीं। उधर से एक सफेद रंग का कुत्ता आया और उसकी गोलियों को सूँघने लगा। नूरा एक कमची उठा कर कुत्ते को मारने लगा। वह चूँ चूँ करता धरती पर लेट गया। नूरा उसे बदस्तूर मारता रहा, क्योंकि कुत्ते की फरियाद सुनने वाला उसका चाचा अमीर अली वहाँ मौजूद नहीं था। यह वही कुत्ता था, जिसके कारण अमीरअली उस रात अब्दुलसमद की हैसियत बिगाड़ रहा था।

मरीयम से तनिक हटकर मोटी-सी एक दूसरी स्त्री बैठी थी। उसके सामने एक सन्दूकची खुली पड़ी थी, जिसमें आईना, तेल, कंघी और पान-सुपारी रखी रहती थी। उसे जब भी देखो, उसके हाथ में कंघी अवश्य होती थी। वह बाल बनाती-सँवारती थी, या फिर पान खाती थी। उस दिन भुनिया ने उससे मजाक करते हुए कहा था—"अरी गुड़िया क्या कर रही हो?" और फिर आप ही हाथों को मटकाते हुए उत्तर दिया था—"गुड़िया कंघी कर रही है, गुड़िया आईना देख रही है।" अर्थात् उसका नाम गुड़िया था। उसका घरवाला जामा मसजिद के सामने पीर हरे-भरे मरवर सामरी की दरगाह के आगे बैठा अँगूठियाँ

बेचा करता था, जिनमें हज्जाज़ से आये हुए पावक नीलम के नगीने जड़े हुए थे और जिन्हें पहनकर मनुष्य की मनोकामना पूरी हो जाती थी। उधर उसका पति लोगों की मनोकामनायें पूरी किया करता था और इधर गुड़िया यहाँ बैठी बालों में कंघी किया करती थी। उसे चुप बैठे देखकर संदेह होता था कि वह गूंगी है अथवा उसके पास कहने के लिए कुछ नहीं है। उसने भी नीलम की एक अँगूठी पहन रखी थी। शायद उसकी सब मनोकामनायें पूरी हो गई थीं, इसीलिए वह चुप रहती थी क्योंकि जब आदमी की कामनायें पूरी हो जायँ तो उसे बोलने और संघर्ष करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह मुँह में ज़बान रहते हुए भी गूंगा है। कामनायें ही मनुष्य को मनुष्य बनाती हैं, उसे हरकत में लाती और संघर्ष-शील बनाती हैं। शोषण पर टिके हुए इस समाज के संरक्षक और सुधारक बुद्ध से लेकर आज तक के सुधारक इसीलिए मनुष्य को कामनाओं के त्याग का उपदेश करते आये हैं ताकि उसमें संघर्ष की प्रेरणा का स्रोत ही सूख जाय और वह पत्थर की अचल मूर्ति बन जाये ताकि उससे समाज और उसकी मर्यादाओं के लिए कोई भय और डर उत्पन्न ही न हो।

गुड़िया भी एक मूर्ति थी—गूंगी और अचला। उसका पति दोनों समय का भोजन ख़रीद लाता था, वे दोनों खाते थे और सो रहते थे। दिन रात का सतत और अटूट क्रम गुड़िया की आँखों के सामने से गुज़रता रहता था और वह उसे चुप और मौन देखती रहती थी।

इस वृक्ष से थोड़ी दूर आगे चलकर लकड़ी के स्टाल बन रहे थे, जो उस समय से बनने आरम्भ हुए थे जब से शरणार्थियों को चाँदनी चौक से उठा दिया गया था और उनके लिए रोटी कमाने का कोई साधन नहीं रह गया था। वे लोग प्रति दिन यहाँ आते थे, स्कीमें बनाते थे—दुकानें खुलेंगी, शानदार मंडी चलेगी, जिसका नाम 'भगतसिंह मार्केट' होगा, खूब सौदा बिकेगा। कौशल उनकी बातें सुनता था और सोचता था— इस पूंजीवादी व्यवस्था में शहीदों के नाम पर दुकानदारी चलती है, सौदा बिकता है। यदि इस समय भगतसिंह किसी प्रकार देह धारण करके

दोबारा भांजाय और शहीदों के नाम पर दुकानदारी करने वालों पर एतराज़ करे, तो अवश्य उसे रूस का एजेण्ट घोषित करके जेल में डाल दिया जायेगा और कुछ अचरज नहीं कि देशद्रोह का आरोप लगाकर फांसी ही लगा दी जाय।

बातें होती रहीं और योजनायें बनती रहीं, लेकिन मार्केट न बन सकी, क्योंकि फौजी अधिकारियों ने म्युनिसिपैलिटी को यह जगह देने से इनकार कर दिया था। अब शरणार्थी इधर नहीं आते थे और लकड़ी के खोखे भी धीरे-धीरे उठ गए थे। परेड ग्राउंड, फिर परेड ग्राउंड था। वह मुहताजों, निर्धनों और आश्रयहीन लोगों की पनाहगाह था, और खेल कूद की जगह था। उसे मण्डी बनना स्वीकार नहीं था। उसकी आत्मा सजग थी और सजग आत्मा आज़ादी को प्राणों से प्रिय समझती है।

मैदान की गोद सब के लिए खुली है। सैकड़ों आदमी दिन भर इधर-उधर पड़े धूप सेंका करते हैं। जिन्हें रात को सर्दी के मारे नींद नहीं आती, वे यहाँ फैलकर सोते हैं, कुछ लोग मालिश करते हैं, गप्पें हांकते हैं; सुल्फा पीते हैं और कभी-कभी बहुत से लोग एकसाथ जमा होकर बैतबाजी करते हैं।

कौशल मैदान से जितना रब्त-जब्त बढ़ा रहा था, उतना ही वह उसका विश्वस्त होता जा रहा था। मैदान ने अपना दिल खोलकर उसके सामने रख दिया था, जो उदार और सुन्दर था। उसके वक्षस्थल पर जो दाग़-धब्बे थे, वे सिर्फ बाहरी थे; उनके दिल पर उनका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा था और वे मैदान के अपने नहीं थे, समाज की कीचड़ के थे, जो किसी समय भी धुल सकते थे।

कौशल इधर-उधर घूमता और चारों तरफ दृष्टि डालता हुआ मज़ार की ओर चला गया। नूर अल्लाह शाह की कब्र के पास वही औरत बैठी थी, जो उस दिन इब्राहीम के साथ खाना खा रही थी। उसके साथ चार-पांच औरतें और बैठी थीं।

"इब्राहीम कहाँ है ?" कौशल ने बात करने की राह निकाली। वैसे

वह जानता था कि इब्राहीम यहाँ नहीं होगा, इस समय वह अपने काम पर जाता है।

"मालूम नहीं, यहीं होगा कहीं।" औरत ने उत्तर दिया, और एक तिनके से दाँतों की रेखाओं को कुरेदना शुरू किया।

"ये औरतें तो यहाँ नहीं रहतीं?"

"नहीं, उधर चौराहा बैरमखाँ की ओर फ़क़ीरों की जो बस्ती है, उसमें रहती हैं, यहाँ सिर्फ़ मिलने आई हैं।"

"तुम्हारी वाकिफ़ हैं?"

"हाँ, हम सब एक ही बिरादरी के लोग हैं, सब साईं हैं, आपस में रिश्ते-नाते हैं।"

यह औरत बहुत ही सीधी-सच्ची बात करती थी। उसमें बनाव और लाग-लपट का लेशमात्र भी नहीं था। जैसी वह बातें करती थी, वैसी ही आप भी सीधी, सच्ची और निर्भीक थी। कौशल ने उसे कई बार लोगों को बुरी तरह फटकारते और डाँटते-डपटते देखा था। एक दिन वह एक फ़क़ीर से कह रही थी—'तुम भी आदमी हो? बोलते शर्म नहीं आती, बेटी के···' उसने गाली दी और कहा, "तुम पाखाने जाकर चूतड़ तक तो धोते नहीं और बनते हो फ़क़ीर। तुम फ़क़ीरी को ज़लील करते हो और जैसे हो वैसी ही जगह पड़े हो। खुदा गोबर के कीड़े को फूल पर नहीं बैठाता। देखते नहीं तुम्हारे ये कपड़े कितने गंदे हैं! बहन के···ये भी फ़क़ीर बनते हैं।"

और वह फ़क़ीर गालियाँ सुनकर भी प्रसन्न था; उन्हें माता के दूध की तरह पी गया था। इकहरे शरीर की यह निर्भीक स्त्री कौशल को पसन्द थी और इस बस्ती की नायिका-सी जान पड़ती थी। उससे बोलने-बात करने को जी चाहता था। अपने लोगों से उसका व्यवहार कैसा ही उद्दण्ड हो, लेकिन अपरिचित और शिक्षित लोगों से बात करते समय वह शिष्ट और सुशील हो जाती थी और उसका स्वर मैदान की तरह चटियल और हमवार होता था।

लेकिन मैदान सब जगह से हमवार नहीं था। यही दो-चार गज परे ढलवान शुरू होती थी और जहां से ढलवान शुरु होती थी, वहां एक पंजाबी परिवार डेरा जमाये हुए था। चौदह-पन्द्रह वर्ष का एक गौर-वर्ण लड़का एक नया विलायती बाजा—पंचतारा लिए बैठा था। लड़के का नाम रौनक अली था। कौशल उस से भली प्रकार परिचित था। एक दिन बड़ी बी ने उसे पुकारा था—"ओ पंजाबी लड़के! इधर आना। कहां, बाज़ार जाते हो? अच्छा सुनो, यह चार पैसे का तेल हमारे लिए भी लेते आना।" उस समय से कौशल उसे जानता था और इधर से गुज़रते समय प्राय उससे बात किया करता था। उसके माध्यम से वह परिवार के दूसरे लोगों से भी परिचित हो गया था। उसे पंजाबी में बात करते सुनकर रौनक अली के बाप ने कहा था—"हमारा वतन भी पंजाब है, पर आठ-दस वर्ष से इधर ही रहते हैं।"

वे दंगे और बँटवारे से पहले इधर आ गये थे, शायद इसीलिए शरणार्थी न कहलाकर फ़कीर कहलाते थे। अब वे उत्तर प्रदेश के किसी गाँव में रहते और मेहनत-मजदूरी करते थे। रौनक अली से बड़ी उनकी एक लड़की थी। भाई की तरह गौरवर्ण, गोल-गोल चेहरा, गठीला शरीर कोमल और गुदगुदा था। वह बड़ी ही चचल और सरल थी। वह जवान भले ही हो गई थी, लेकिन जवानी से सम्बन्धित भाव-नाओं से एकदम अबोध और बेखबर थी। इस निरीहता और भोलेपन ने सोने में सुहागा कर दिया था। उसका देहाती सौन्दर्य चमक उठा था। उसमें चुम्बक का-सा आकर्षण था, जो स्वभावत. मनुष्य को अपनी ओर खीचता था। एक दिन जब कि कौशल उधर से गुज़र रहा था, उसकी कमर पर खुजली हुई; उसने झटपट कमीज़ उतार दी और वातावरण से अनभिज्ञ हो जूएँ देखने लगी। यह विचार उसके मन में उत्पन्न ही नहीं हुआ कि वह जवान है और किसी की कुत्सित दृष्टि उसके कुंवारे शरीर और खुली छातियो पर पड सकती है। चट्टान सुन्दर होती है, बर्फ़ का आवरण उसे सदा ढांपे नही रहता। किसी की दृष्टि उस पर पडती है,

तो पड़े, वह उसे छेद नहीं सकती; पिघला नहीं सकती। चट्टान-चट्टान और दृष्टि-दृष्टि रहेगी।

कौशल रौनक के पास गया और उसका बाजा देखने लगा। रौनक़ अली ने उसमें से एक काग़ज़ का पुर्ज़ा निकाला और उसे कौशल के हाथ में थमाते हुए पूछा—"इस पर क्या लिखा है ?" कौशल जब यह पुर्ज़ा पढ़ रहा था, तो वह चंचल और भोली लड़की भी भागकर वहाँ आ गई। उसने अपने हाथ घुटनों पर रखकर शरीर को ऐसे झुका दिया कि उसका मुंह ठीक कौशल के कंधे पर था और वह बड़ी उत्सुकता से पुर्ज़े पर लिखे अक्षरों को देख रही थी, जैसे वे शब्द नहीं, जादू जगाने का मंत्र हो। पढ़ने के उपरान्त कौशल ने अपनी भाषा में उन्हें बताया—"इस में लिखा है, यह बहुत बढ़िया बाजा है और इटली से बनकर आया है। जल्द खराब नहीं होगा।"

"अब्बा ! काग़ज़ में लिखा है, यह बाजा इटली में बना है।"

लड़की ने ज़रा परे बैठे हुए अपने पिता को शब्दों के रहस्य से सूचित किया।

"अच्छा, तू इधर आ; मेरी बात सुन।"

"ऊँ हूँ !" उसने गर्दन हिलाकर इन्कार किया और कौशल से बोली—"हम यह बाज़ार से आठ रुपये में लाये हैं।"

"कौन बजाया करेगा इसे ?"

"मैंने ख़रीदा है; मैं बजाया करूँगा इसे।" इससे पहले कि लड़की कोई उत्तर देती, रौनक़ बोल उठा।

"और तुम ?"

लड़की शरीर का समस्त बोझ दायें घुटने पर डालकर बायें हाथ से पेट खुजलाने लगी और उसने फैली-फैली आँखों से रौनक़ की ओर ऐसे देखा जैसे शाप देना चाहती हो। लेकिन वह भोलापन ही क्या जो किसी का अहित चाहे ! दूसरे ही क्षण इन सुन्दर आँखों का भाव बदल गया; उसमें लड़की के मन की अभिलाषा प्रकट हुई, जो कह रही

थी—"चाहती तो हूँ कि मैं भी बजाऊँ; लेकिन यह उसकी चीज़ है। वह मुझे क्यों देगा। काश ! एक बाजा मेरे पास भी होता !"

"जा मुन्नो, दुकान से चावल ले आ," उसके बाप ने फिर कहा और लड़की ने सिर हिलाकर फिर इन्कार कर दिया। वह बाजे को जी भरकर देखना, उसे छूना और उसके बारे में बातें सुनना पसन्द करती थी, जैसे उसके भीतर छिपे हुए राग को अपनी आत्मा में भर लेना चाहती हो।

"मर जाय तू, सुनती नहीं। अच्छा न जा, खाने को नहीं मिलेगा।"

पिता झुँझला रहा था; क्रुद्ध हो रहा था; लेकिन मुन्नो तटस्थ खड़ी थी, जैसे उसने पिता की बात सुनी ही न हो। पर, दूसरे ही क्षण वह जूता पहनकर स्वयं जाने लगा, तो वह दौड़कर झट उसके पास चली गई और बोली—"लाओ, दो पैसे, मैं जाती हूँ।"

रौनक़ ने कौशल को बताया कि वे आज शाम को चले जायँगे। फ़क़ीर ज़रूर हैं; लेकिन माँगते नहीं; अपना काम करते हैं।

कौशल आगे बढ़ा तो रफ़ीक़ की बीवी को देखा; वह पड़ौसन से मियाँ की शिकायत कर रही थी—"इसी बात पर तो लड़ाई होती है, वह शक करता है कि मैं ग़ैर मर्दों से बोलती हूँ। तुम जानो, मैं कहीं बोलती हूँ।"

कौशल ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि मज़ार के गिर्द जो तार लगी हुई है, उसके पास खड़ा होकर क़ब्रों को देखने लगा। उसने कल किसी को बातें करते सुना था कि जिस कलाकार ने जामा मस्जिद पर नक्काशी की है, उसकी क़ब्र भी परेड ग्राउंड में बनी हुई है। वह जानना चाहता था कि उस कलाकार की क़ब्र कौनसी है, और उसका नाम क्या है ?

इत्तफ़ाक़ से बुंदे साईं का गुज़र उधर से हुआ और कौशल ने उससे दरियाफ़्त किया—"ये क़ब्रें किन लोगों की हैं ?"

"हमें तो अपनी भी खबर नहीं," बुंदे साईं ने उत्तर दिया और

सिर हिलाते हुए वह अपनी ही धुन में आगे बढ़ गया।

कौशल उसकी बात पर मन-ही-मन में हँसा और मुस्कराते हुए चल पड़ा; जब जीवित और तत्कालीन मनुष्य के बारे में ही हमारा ज्ञान अधूरा है और वह अपने बारे में जानने की अभिलाषा भी नहीं रखता, तो अतीत की कौन खबर ले? जो क़ब्र में पड़ा है, बेहतर है उसे आराम से सोने दिया जाय। धरती की कोख में जाने कितने कलाकार गुमनाम पड़े हैं और उनकी कृतियों पर सम्राटों के नाम अंकित हैं। कलाकार बेचारों का कोई नाम तक नहीं जानता; जानने की ज़रूरत ही नहीं समझता।

११

म्युनिसिपल नल से जो पानी आता है, उससे मैदान को रबड़ की मोटी-सी नली लगाकर सींचा जाता है; लेकिन कई बार नल आप-ही-आप खुल जाता है और पानी मैदान में फैल जाता है। आज भी एक स्थान पर नल खुल गया था और धरती में से फव्वारे की तरह पानी ऊपर उठ रहा था। पानी का वेग कुछ अधिक था, इसलिए फव्वारा बहुत ही ऊँचा उठ रहा था। कुछ लोग जमा होकर यह तमाशा देख रहे थे और उनमें मुन्नो भी थी। लेकिन जब कौशल वहाँ पहुँचा तो वह जल्दी-जल्दी बाज़ार की ओर चल पड़ी; शायद कौशल को देखकर उसे चावल लाने की बात याद आ गई थी। जब वह पानी को ऊप उठते हुए देख रही थी तो उसने ऊपर को झाँकते हुए कमीज़ का प सिरा पकड़कर दाँतों में दबा लिया था और बच्चों की तरह उसे च रही थी। अब जब वह जल्दी-जल्दी चल रही थी तो कमीज़ का दा बदस्तूर उसके दाँतों में था और वह कल्पना में खोई हुई-सी आगे रही थी।

कौशल भी उधर ही जा रहा था। उसकी निगाहें मुन्नो पर हुई थीं। चूँकि वह जल्दी-जल्दी चल रही थी; इसलिए कौशल क़दम तेज़ कर दिये। उसका जी मुन्नो से बात करने को चाहता

वह उसके निकट पहुँचा; लेकिन दूसरे ही क्षण रुक गया और जिधर मुन्नो जा रही थी, एकदम उससे भिन्न दिशा में चलने लगा। उसे सहसा ख्याल आ गया था कि कोई उसे यों चलता देखेगा तो समझेगा कि सम्भवतः वह लड़की का पीछा कर रहा है।

अब वह सजग था। उसे खुद अपने आप पर सन्देह हो रहा था और वह सोच रहा था कि इस प्रकार मुन्नो के पीछे-पीछे चलने का उद्देश्य क्या था? उद्देश्य वास्तव में कुछ भी नहीं था। वह पंजाबी लड़की थी, अल्हड़ और मासूम। उसमें एक आकर्षण था और कौशल अनजाने ही उस ओर खिंचा जा रहा था। कभी हीर भी इसी प्रकार अल्हड़ और मासूम होगी।

मुन्नो तो खैर अल्हड़ और मासूम थी, स्वस्थ और सुन्दर थी; उसका पीछा करने में सन्देह भी हो सकता है। लेकिन वह मुनिया! क्या उसके बारे में भी सन्देह की गुंजाइश थी? कौशल को एक घटना स्मरण हो आई:

एक दिन जब वह जमाल को अपने शहज़ादे-शहज़ादी से लाड़-लड़ाते देख रहा था, मुनिया एक नीले रंग के चमकदार मनके से खेल रही थी। मनके में एक धागा था, जिसे मुनिया ने दायें हाथ में पकड़ रखा था और वह मनके को बायें हाथ से उछाल रही थी; देख रही थी और झूमझ-झूमकर कह रही थी—"इसे मैं कुत्ते को पहनाऊँगी, कुत्ते को पहनाऊँगी। हूँ, उसे यह बहुत अच्छा लगेगा।"

"लाओ मुझे दो मनका।" कौशल उसके समीप जा बैठा। मुनिया ने मनका कौशल के हाथ में दे दिया और बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगी।

"इन्हें भी जरा दिखा दो।" पीछे से एक आवाज़ आई लेकिन कौशल ने शायद उसे सुना ही नहीं, मुनिया से बोला—"इसे कुत्ते को पहनाओगी; तुम्हीं पहन लो ना।"

"मैं क्यों पहन लूँ, तुम पहन लो।"

“उर्दू में पढ़ लेता हूँ; अंग्रेजी तो नहीं ?”

“नहीं जानती।”

जिस प्रकार बेंत एक बार झुकाकर छोड़ देने पर आप-ही-आप उछलती रहती है, उसी प्रकार बात करते समय जूलिया का शरीर उछलने लगता था और वह काफी देर तक उछलता ही रहता था। उसे उछलते और थिरकते देखने के लिए ही कौशल सामान्य बातचीत में भी कुछ बात कह देता था।

“तुम्हारा नाम क्या है ?”

वह चुप रही और ऐसे देखने लगी जैसे उसे अपना नाम भूल गया हो। कौशल ने सोचा था कि वह झट कहेगी कि क्यों बताऊँ और उछलने लगेगी; उछलती ही रहेगी और उसके स्थिर होने से पहले ही कौशल कहेगा—“मैं जानता हूँ, तुम्हारा नाम है जूलिया।” जिससे वह और भी उछलेगी, अधिक वेग से उछलेगी और बड़ी देर तक उछलती रहेगी। अर्थात् वह अपने ज्ञान का प्रभाव जूलिया पर देखना चाहता था।

लेकिन पीछे जूलिया का पति रजकूँ बैठा था; अकेला और मौन भी उसके होंठ बंद रहे थे। अपनी औरत के पास कौशल का यों बैठना और मुलायम कर बातें करना उसे नागवार लग रहा था।

उसका प्रश्न सुनकर तो उसकी आशा का जैसे कोई अंकुर ही फूट गया और वह झुँझलाकर बोला—“क्या मतलब है तुम्हारा; क्यों पूछते हो उसका नाम ?”

“कोई खास मतलब नहीं, वैसे ही पूछ रहा था।” कौशल ने उत्तर दिया और वह जूलिया के पास से उठकर दूर हट गया।

“अच्छा, तो हम कहे देते हैं, औरत से बात करने की कोई जरूरत नहीं।”

“लेकिन आप नाराज क्यों होते हैं, मैं उससे हक़ तो नहीं जता रहा था ?”

झुनिया का पति कुछ लज्जित और हतप्रभ-सा हो गया। गर्दन झुक गई और अँगुली से धरती पर लकीरें खींचते हुए बोला—"मैं आपको अकसर यहाँ घूमते देखता हूँ।"

"घूमता तो ठीक हूँ। मगर आप कहे, तो आइन्दा न आया करूँ।"

"आने को तो मैं मना नहीं करता," झुनिया के पति ने उसी प्रकार गर्दन झुकाये और अँगुली से धरती पर लकीर खींचते हुए कहा—"लेकिन औरत से बात करने का कोई कायदा नहीं है। आपको जो बात पूछनी हो, वह हमसे पूछिये।"

"यों ही सही। बताइये आप का नाम क्या है?"

उसने ऊपर नज़र उठाकर देखा और एक मिनट तक कौशल की आँखों में आँखें डालकर देखता रहा, बोला—"मेरा असली नाम हामिद अली है।"

नाम बताकर हामिद अली का चेहरा तनिक ठोस हो गया और आँखें भी कुछ अधिक फैल गईं। कौशल को अजीब सा लगा, बोला—"अच्छा असली नाम तो सुन लिया और नकली?"

"नक़ली कुछ नहीं। असली तो मैंने इसलिए कहा है कि आप से झूठ नहीं बोला, ठीक कहा है। इधर जितने इलाके हैं···" उसने अँगुली से संकेत करते हुए कहा—"क्या हिन्दू क्या मुसलमान में उन सब में घूमता हूँ और हर एक इलाके का थानेदार मुझे जानता है।"

"वह कैसे?"

"मैं सबके पास जाता हूँ और बरतनों पर क़लई करता हूँ।"

"अच्छा तो आप क़लईगर हैं।"

"हाँ, गली-मुहल्ले के सब लोग जानते हैं कि मैं कलईगर हूँ।"

"तो गोया सब आप को क़लईगर कहते हैं और आपका असली नाम हामिद अली कोई नहीं जानता।"

यह एक ऐसा सत्य था जो उसके अपने जीवन से सम्बन्ध था; लेकिन वह खुद भी इसे जानता नहीं था। शायद इसे न

ही उसके लिए हितकर था। आज सुना तो अवाक् रह गया। उसकी गरदन आप-ही-आप झुक गई और वह फिर धरती पर लकीरें खींचने लगा।

उसे उदास और व्यथित देखकर कौशल को भी अफ़सोस हुआ और वह सोचने लगा कि इस समाज ने मनुष्य को कितना हीन और दरिद्र बना दिया है। वह तनिक-सा प्रहार भी नहीं सह सकता; अपने बारे में सत्य को भी जानना नहीं चाहता। मनुष्य जितना हीन और दीन होता है, उतना ही संदेह और शंका में उलझा रहता है। संदेह और शंकाएं भी रूढ़िवाद का ही एक रूप हैं, जो मानव-विकास को कुंठित करती हैं।

× × ×

बाईं ओर जमाल घास पर बैठा था और पास ही उसके लेले आपस में खेल रहे थे। वह मन-ही-मन म कुछ सोच रहा था और दाढ़ी खुजला रहा था। सोचते-सोचते और दाढ़ी खुजलाते हुए वह लेट गया और बाजू पीछे की ओर फैलाकर गाने लगा—

खुदी में आकर खुदा को भूला, न तुझ-सा कोई नादान होगा।
चलेगा जब तू जहाँ से तेरा, अँधेरे घर में मकान होगा॥

वह इस पद को बार-बार गा रहा था और प्रसन्न हो रहा था। उसका स्वर कभी ऊँचा और कभी नीचा हो जाता था, स्वर के साथ ही उसकी मानसिक स्थिति में भी उतार-चढ़ाव उत्पन्न हो रहा था। धीरे-धीरे वह आत्म-विमुग्ध होकर आनन्द की तरंग में डूब गया और गाना बंद करके हाथों से चुटकियाँ बजाने लगा। कभी-कभी वह कोई निरर्थक और अबोध शब्द मुंह से निकालता था और हँस देता था। लेले आपस में खेल रहे थे, एक दूसरे से छेड़-छाड़ कर रहे थे। एक बार वे खेलते-कूदते प्रायः उसके ऊपर आ चढ़े, लेकिन जमाल ने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, आहिस्ता से परे धकेल दिया। इस समय वह इस भौतिक संसार में नहीं था शायद खुदी को भुलाकर खुदा में डूब गया था।

कौशल उसे धूप सेंकते और गुनगुनाते छोड़कर उठ खड़ा हुआ और मन-ही-मन में कुछ सोचता हुआ मैदान में घूमने लगा। हमेशा की भाँति बहुत से लोग मैदान में इधर-उधर लेटे पड़े थे। उनमें कोई फकीर था और कोई कुली वाला मजदूर था, और कहीं-कहीं मध्यवर्ग के व्यक्ति दिखाई देते थे, जो किसी कारण बेकार और बेघर हो गये थे और अपने निराश व्यथित मन को लिये यहाँ आ पड़े थे। उनके शरीर पर कुछ कपड़े थे, जो धीरे-धीरे फटते जा रहे थे; बाकी सब लोग प्रायः नंगे बदन थे। कोई चित्त और कोई औंधा पड़ा था। उन्होंने शरीर को पूरी तरह फैला रखा था ताकि सूर्य की उष्णता रात के जाड़े में सिकुड़े हुए अंगों को गर्मी दे और उनमें जमा हुआ खून एकबार फिर हरकत करने लगे और वे स्वस्थ होकर चल-फिर सकें।

वे अचेत पड़े थे और उनके शरीर मैदान की घास के सदृश सूर्य की किरणों को अपने अन्दर जज्ब कर रहे थे। वैज्ञानिकों का कहना है कि सूर्य की किरणें मानव-शरीर में जज्ब होकर विटामिन में परिवर्तित हो जाती हैं और उसे जीवन प्रदान करती हैं। ये लोग नित्य के अनुभव से इस सत्य को जानते थे और यहाँ परेड ग्राउँड में लेटकर सूर्य की किरणों को प्राणों में भर लेते थे। आदिमानव ने भी सूर्य की इस प्राणदायक शक्ति को समझ लिया था तभी गायत्री मंत्र का निर्माण हुआ था।

एक स्थान पर दो फकीर बारहगीटी खेल रहे थे। कौशल उनके पास जा बैठा और खेल देखने लगा। वे सोच-सोचकर निहायत इत्मीनान से चाल चल रहे थे। चेहरों से किसी प्रकार का आवेश, हर्ष अथवा खेद प्रकट नहीं होता था। वे गम्भीर और शान्त थे, घुटनों पर बाहें और हाथों पर सिर रखकर पहले खूब सोचते थे और फिर जो गीटी चलनी होती थी, उसे आहिस्ता-आहिस्ता उठाते थे और खेल को आगे बढ़ाते थे।

दोनों की उम्र काफ़ी हो चुकी थी। एक के चेहरे पर [illegible]

...ी सफ़ेद दाढ़ी थी; आँखों की ज्योति जैसे बुझ चुकी थी; ...
में चिंतन की प्रौढ़ता चमक रही थी। दूसरा व्यक्ति इससे कुछ कम
उम्र का जान पड़ता था। दाढ़ी-मूँछें साफ़ थीं, चेहरे की खाल यद्यपि
ढीली पड़ गई थी और पककर स्याह हो गई थी; तथापि उस पर झुर्रियाँ
नहीं पड़ी थीं। वह अपने चिंतन को प्रौढ़ बनाने का प्रयत्न कर
रहा था।

"अगर यह चलो तो कैसा रहे ? उनकी दो गोटियाँ पिट
जायेंगी।"

कौशल पहले तो चुपचाप बैठा उनकी चाल देखता रहा; लेकिन
जब खेल को भली प्रकार समझ लिया और दिलचस्पी बढ़ गई, तो बिन
दाढ़ी के व्यक्ति को हठात् यह मशविरा दिया। दोनों व्यक्तियों में से किसी
ने भी उसकी ओर ध्यान नहीं दिया; चेहरों पर से भी कोई भाव व्यक्त नहीं
हुआ, जैसे उन्होंने कौशल की बात सुनी ही न हो; जैसे वे उसकी
उपस्थिति ही से बेख़बर हों। वे परेड ग्राउंड में बैठे थे, जो किसी के
बाबा की जागीर नहीं था और वे अपनी-अपनी बाज़ी आप खेलना
चाहते थे। कोई दूसरा उसमें दख़ल क्यों दे ? उन्हें किसी के मशविरे
की आवश्यकता नहीं थी।

कौशल अप्रतिभ-सा हो गया। उसे अफ़सोस था कि नाहक़ इतनी बात
कही; चुप बैठा रहता तो क्या हर्ज था! विद्वत्ता बात कहने में नहीं,
बात को समझाने में निहित होती है।

अब उसके लिए खेल में दिलचस्पी लेना कठिन था और सहसा
उठकर चले जाने में भी मानहानि थी। वह खिन्न मन दूर खजूर के
पेड़ों की ओर देखने लगा। ये पेड़ परेड ग्राउंड से परे यादगार में उगे हु...
थे। उनकी चोटियों पर चंद हरे पत्ते थे। लम्बे-लम्बे तने रूखे-सूखे औ...
नंगे दिखाई देते थे। कौशल इन पेड़ों के बारे में न सोचकर ऐसी
एक और घटना के बारे में सोच रहा था।

जब उसने पहले-पहल जामुन के वृक्ष के नीचे जाना शुरू किया

तो उसे यह देखकर आश्चर्य होता था कि ये लोग, जिनके पास पर्याप्त कपड़ा भी नही है, इस क़दर कड़ाके की सर्दी में इस खुले मैदान में जहां शरीर को भेदने वाली ठंडी हवाएं चलती हैं, अंधेरी लम्बी रातें इत्मीनान से काट लेते हैं। एक दिन उसने अमीर अली और नूरे के अब्बा से बातों-ही-बातों में पूछा—"आप सर्दी-गर्मी सारा साल यही पड़े रहते हैं?"

"और कहां जायें, कोई ठिकाना है?"

"जब मेंह बरसता है, तो क्या करते हैं?"

"कुछ लोग जामा मस्जिद में और कुछ इस दरगाह में चले जाते हैं।"

"लेकिन आजकल तो सर्दी बहुत है, और आप लोगों के पास कपड़ा भी काफ़ी नही है।"

"क्या करें! खुदावंद करीम आदमी को जिस हालत में रखता है, उसी में रहना पडता है।"

उस अधेडउम्र आदमी—नूरे के अब्बा की आंखें आकाश की ओर उठ गईं। उनमें एक ठोस और स्थिर आस्था का भाव था, जो निश्चय ही परम्परागत सन्तोष और परित्याग से और ईश्वरीय इच्छा को ही सब कुछ मान लेने से उत्पन्न हुआ था। कौशल ने इस आस्थाभाव को नहीं देखा। वह अपने मन में पीडित, दलित और शोषित मनुष्य के प्रति सच्ची सहानुभूति रखता था। इस सहानुभूति के कारण उसके मस्तिष्क में समाज और सामाजिक विधान के सम्बन्ध में जो विचार भरे हुए थे, उन्हें व्यक्त करने के लिए वह बहुत ही उग्र और उत्सुक हो उठा, बोला—"मगर आदमी की यह हालत खुदा तो नही बनाता······"

"खुदा नही बनाता तो और कौन बनाता है," अमीर अली ने बात काटी और पूर्ण दृढ़ता और विश्वास के साथ सदियों से सीना-बसीना चली आ रही बात दोहराई, "दुनिया में छोटे-बड़े खुदा ही ने तो बनाये हैं। सब को क़िस्मत का लिखा मिलता है।"

"क़िस्मत-विस्मत कोई शै नही है," कौशल ने भी पूर्ण विश्वास और

सदा सावधान रहता। हाँ, यदि वार्तालाप का विषय उसकी अपनी विचारधारा के अनुकूल और उसमें कोई विकासात्मक, सामाजिक या ऐतिहासिक तत्व होता, तो समर्थन अवश्य कर देता और कभी-कभी एक-आध वाक्य ऐसा कह देता, जिससे बातचीत को आगे बढ़ाने में उचित मार्ग मिल सके।

परेड ग्राउँड में कुछ लोग ऐसे भी मिले थे, जिनसे सिर्फ दो-चार मिनट का परिचय हुआ था और फिर दोबारा भेंट नहीं हो सकी थी। वे वास्तव में रमते योगी थे, जो यों ही घूमते-घामते इधर आ निकले थे, और एक-आध दिन अथवा दो-चार घंटे इस मैदान को अपनी आरामगाह बनाकर चले गये थे। जिस प्रकार नक्षत्र सैकड़ों, हजारों साल की गर्दिश में एकबार जिस मंजिल से निकल गये, उसकी दोबारा कभी परिक्रमा करें, करें, और न करें तो न भी करें, इसी प्रकार देश के ये रमते योगी फिर इधर आये, आयें और न आये तो न भी आयें।

लेकिन उनसे दो-चार मिनट का परिचय ही पर्याप्त था। वे इतने ही में कौशल के मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ गये थे। उनकी आकृतियाँ कल्पना-पट पर अंकित होकर रह गई थीं। उनकी बातों में कुछ ऐसा यथार्थ तत्त्व, ताजगी और गर्मी होती थी कि अजल याद आते ही वे बातें भी ठोस और साकार होकर निगाहों के सामने नृत्य करने लगती थीं। उनका मौन भी अर्थपूर्ण और उत्साहजनक होता था।

जिस जगह ये लोग-'बारहगोटी' खेल रहे थे, उस दिन वहाँ एक फकीर बैठा था, जिसकी आँखें बड़ी-बड़ी और चमकदार थीं, सिर पर लम्बे-लम्बे बाल थे और वह चौड़ी-बहुत ही-चौड़ी आस्तीनों वाला जोगिये रंग का कुर्ता पहने हुए था, गले में मोटे-मोटे दानों की माला और बटे हुए काले धागे डाल रखे थे और पास ही त्रिशूल और झोली पड़ी हुई थी। उसने एक टाँग आधी फैला रखी थी, जिसके अँगूठे में एक धागा फँसाकर उसका एक सिरा दाँतों में दबा रखा था और दूसरे सिरे को दोनों हाथों से बटे दे रहा था। वह धागे को बढ़ावा देकर उसमें गाँठें लगाने लगा।

एक और व्यक्ति उसे बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से देख रहा था। शायद वह कोई भक्त था और उसकी किसी अभिलाषा-पूर्ति के लिए ही यह धागा तैयार किया जा रहा था। कौशल पहले तो दूर खड़ा देखता रहा; लेकिन जब धागा तैयार हो गया, तो इस विचार से कि अब इसके सम्बन्ध में बातें होंगी, वह निकट चला गया।

"क्या मैं बैठ सकता हूँ ?" कौशल पहले झोली के निकट बैठ गया और फिर पूछा।

"बड़े शौक से," फ़क़ीर बोला, "मैदान पड़ा है, यह हमारे बाबा की जागीर थोड़े है।"

"तो आप जागीर बनाने की भी तमन्ना रखते हैं ?" फ़क़ीर ने अपनी बात विनोदशील ढंग से कुछ इस प्रकार मुस्कराते हुए कही थी कि कौशल के मन में यह प्रश्न आप-ही-आप उत्पन्न हो गया।

"हम जागीर काहे को बनायेंगे ? आज यहाँ, कल वहाँ; सारी दुनिया हमारी है।"

उसने मुक्त कंठ से कहा और आँखों को इस प्रकार खोला, जैसे उनमें वाक़ई दुनिया की विस्तृतता भरी हुई हो।

कौशल परेड ग्राउंड के निस्तब्ध वातावरण में बैठा हुआ कई बार सोचा करता था कि उसको वे आँखें और यह बात क्यों प्रायः स्मरण हो आती है। वैसे यह एक साधारण वाक्य था; उसमें कोई नवीनता भी नहीं थी। कई बार ऐसे ही साधारण वाक्य मनुष्य की आत्मा का दर्पण बन जाते हैं और चूंकि उन पर मानव-आत्मा की छाप रहती है इसलिए वे भूलते नहीं।

और वह लम्बा-सा आदमी, जिसका सिर बड़ा होने के कारण कान तनिक छोटे दीख पड़ते थे, वह फ़क़ीर नहीं था, यों ही आवारा घूमता था। सिर और दाढ़ी के बाल सफ़ेद नहीं थे; लेकिन बहुत अधिक उम्र का मालूम होता था। जैसे बुढ़ापे और मृत्यु को चकमा देने के लिए ही घूमता-फिरता हो और सदियों से जी रहा हो। दिल्ली से कुछ ऐसा

परिचित था, जैसे उसे बार-बार बसते और उजड़ते देख चुका हो। कौशल को अपने निकट बैठाकर और उसे अपना सहधर्मी समझकर बोला—

"यह वही दिल्ली है, जहाँ मैंने मुसलमानों को राज करते देखा है। जहाँ चाहते थे, दनदनाते फिरते थे। किसी की मजाल नहीं थी ज़रा टोक तो दे। मगर आज यह हालत है कि पहाड़गंज, करोल बाग़ और सब्ज़ी मंडी का रुख़ करना मौत के मुँह में जाने का क़सद करना है। यहाँ जामा मस्जिद पर बैठते दम घुटता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पाकिस्तान लिया नहीं, हमें दिया गया है। हमने पाकिस्तान हासिल करके कुछ पाया नहीं, खोया है।"

"यह आप बजा फरमा रहे हैं," कौशल बोला।

"सोचिये तो सही अब हमारी हैसियत क्या है? हमारी तो छोड़िये *जो पाकिस्तान गये हैं, उन्हें कौन सा आराम मिल गया? बहुतेरे* बेज़ार होकर लौट रहे हैं।"

"और जो वहाँ रहेंगे, क्या उनका रिश्ता ताजमहल और जामा मस्जिद से टूट जायेगा?"

उसने सिर हिलाया। जैसे कह रहा हो कि यह नहीं हो सकता और जो हो गया है, सो भी ऐसे नहीं रह सकता। उसका सिर दो-तीन मिनट तक हिलता रहा और फिर यों अचल हो गया, जैसे वह काठ का बना हुआ हो; जैसे अपनी समस्त इन्द्रियों को भीतर खींच लिया हो। वह कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—

"यह सब अंग्रेज की साज़िश है। अगर वह यह साज़िश न करता, तो वही कुछ होता जो ग़दर में हुआ था। ग़दर में तो वह फिर भी बच गया था; लेकिन अब उसका बच जाना मुमकिन नहीं था।"

वह चुप हो गया। चेहरे पर सौम्यता और गम्भीरता छा गई। वह फिर इन्द्रियों को भीतर की ओर खींचने का यत्न करने लगा; पर इस बार उसे पहले की भाँति सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा लगता था, जैसे

एक और व्यक्ति उसे बड़ी उत्सुकता और श्रद्धा से देख रहा था। शायद वह कोई भक्त था और उसकी किसी अभिलाषा-पूर्ति के लिए ही यह धागा तैयार किया जा रहा था। कौशल पहले तो दूर खड़ा देखता रहा; लेकिन जब धागा तैयार हो गया, तो इस विचार से कि अब इसके सम्बन्ध में बातें होंगी, वह निकट चला गया।

"क्या मैं बैठ सकता हूँ ?" कौशल पहले झोली के निकट बैठ गया और फिर पूछा।

"बड़े शौक से," फ़कीर बोला, "मैदान पड़ा है, यह हमारे बाबा की जागीर थोड़े है।"

"तो आप जागीर बनाने की भी तमन्ना रखते हैं ?" फ़कीर ने अपनी बात विनोदशील ढंग से कुछ इस प्रकार मुस्कराते हुए कही थी कि कौशल के मन में यह प्रश्न आप-ही-आप उत्पन्न हो गया।

"हम जागीर काहे को बनायेंगे ? आज यहाँ, कल वहाँ; सारी दुनिया हमारी है।"

उसने मुक्त कंठ से कहा और आँखों को इस प्रकार खोला, जैसे उनमें वाक़ई दुनिया की विस्तृतता भरी हुई हो।

कौशल परेड ग्राउंड के निस्तब्ध वातावरण में बैठा हुआ कई बार सोचा करता था कि उसको वे आँखें और यह बात क्यों प्रायः स्मरण हो आती है। वैसे यह एक साधारण वाक्य था; उसमें कोई नवीनता भी नहीं थी। कई बार ऐसे ही साधारण वाक्य मनुष्य की आत्मा का दर्पण बन जाते हैं और चूँकि उन पर मानव-आत्मा की छाप रहती है, इसलिए वे भूलते नहीं।

और वह लम्बा-सा आदमी, जिसका सिर बड़ा होने के कारण कान तनिक छोटे दीख पड़ते थे, वह फ़कीर नहीं था, यों ही आवारा घूमता था। सिर और दाढ़ी के बाल सफ़ेद नहीं थे; लेकिन बहुत अधिक उम्र का मालूम होता था। जैसे बुढ़ापे और मृत्यु को चकमा देने के लिए ही घूमता-फिरता हो और सदियों से जी रहा हो। दिल्ली से कुछ ऐसा

परिचित था, जैसे उसे बार-बार बसते और उजड़ते देख चुका हो। कौशल को अपने निकट बैठाकर और उसे अपना सहधर्मी समझकर बोला—

"यह वही दिल्ली है, जहां मैंने मुसलमानों को राज करते देखा है। जहां चाहते थे, दनदनाते फिरते थे। किसी की मजाल नहीं थी ज़रा टोक तो दे। मगर आज यह हालत है कि पहाड़गंज, क़रौल बाग़ और सब्ज़ी मंडी का रुख़ करना मौत के मुँह में जाने का क़सद करना है। यहां जामा मस्जिद पर बैठते दम घुटता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि पाकिस्तान लिया नहीं, हमें दिया गया है। हमने पाकिस्तान हासिल करके कुछ पाया नहीं, खोया है।"

"यह आप बजा फरमा रहे हैं," कौशल बोला।

"सोचिये तो सही अब हमारी हैसियत क्या है? हमारी तो छोड़िये जो पाकिस्तान गये हैं, उन्हें कौन सा आराम मिल गया? बहुतेरे बेज़ार होकर लौट रहे हैं।"

"और जो वहां रहेंगे, क्या उनका रिश्ता ताजमहल और जामा मस्जिद से टूट जायेगा?"

उसने सिर हिलाया। जैसे कह रहा हो कि यह नहीं हो सकता और जो हो गया है, सो भी ऐसे नहीं रह सकता। उसका सिर दो-तीन मिनट तक हिलता रहा और फिर यों अचल हो गया, जैसे वह काठ का बना हुआ हो; जैसे अपनी समस्त इंद्रियों को भीतर खींच लिया हो। वह कुछ देर चुप रहा, फिर बोला—

"यह सब अंग्रेज की साज़िश है। अगर वह यह साज़िश न करता, तो वही कुछ होता जो ग़दर में हुआ था। ग़दर में तो वह फिर भी बच गया था; लेकिन अब उसका बच जाना मुमकिन नहीं था।"

वह चुप हो गया। चेहरे पर सौम्यता और गम्भीरता छा गई। वह फिर इन्द्रियों को भीतर की ओर खींचने का यत्न करने लगा; पर इस बार उसे पहले की भांति सफलता प्राप्त नहीं हुई। ऐसा लगता था, जैसे

उसके भीतर क्रोध की प्रचंड ज्वाला धधक रही हो और वह उससे जूझ रहा हो। उसने अपने क्रोध को एक परिधि, एक सीमा में संयत रहने की शिक्षा दे रखी थी।

कोई व्यक्ति देखने में कितना ही दीन-हीन और मलीन क्यों न हो, वह मनुष्य है। उसमें मनुष्यता और महानता विद्यमान रहती है, जो समय-समय पर जग जाती है और अपने आप को कर्म अथवा वचन द्वारा व्यक्त करती है। इसी मनुष्यता और महानता के कारण प्रत्येक व्यक्ति दासता और दरिद्रता से घृणा करता है और उसके प्रति रोष प्रकट करता है। जामुन के वृक्ष के तले बसने वाले फ़कीर भी, जो समाज के वर्जित व्यक्ति हैं और जिनका भौतिक संसार के साथ बहुत ही मामूली-सा सम्बन्ध रह गया है, कभी-कभी देश की वर्तमान स्थिति और राजनीति पर आलोचना किया करते थे। वे भी इस समय अपने संयत क्रोध को प्रकट कर देते थे।

प्रातः नौ बजे का समय था, कौशल घूमता हुआ उधर आ निकला। गुड़िया बैठी शृंगार-पट्टी कर रही थी। मरियम ने चाय बनाई थी और पीने की तैयारी हो रही थी। एक प्याले में आटा पड़ा था, उसे ख़ाली करने के लिए मरियम ने टीन का एक डिब्बा निकाला और उसे भीतर से देखने लगी।

"आटा खुश्क है। डाल दे, डाल दे इसी में।"

जब वह डिब्बे में झाँक रही थी तो नूरे ने तेज़ी से कहा और एक लकड़ी उठाकर उससे ज़मीन पीटने लगा। प्याला उसी के लिए ख़ाली हो रहा था और वह चाहता था कि चाय उसे शीघ्र मिल जाय।

"आओ बाबू! चाय पी रहे हैं। हमारा दिन अब निकला है।" नूरे के अब्बा ने कौशल से कहा।

"यह तो अमीरों के चोचले हैं कि सुबह उठते ही नाश्ता मिल गया। ग़रीब को तो जब मिल जाय तभी ग़नीमत है।"

अमीर अली बोला। वह सदा अपनी पूरी पोशाक पहने रहता था। इस भी पहने-ओढ़े बैठा था। कोट में फूल लगा हुआ था और सिर पर

अँगोछा बँधा हुआ था।

"सुना होगा," कौशल बोला, "किसी ने हकीम से पूछा, खाना किस वक्त खाना चाहिए ? हकीम बोला, अमीर को जब भूख लगे और गरीब को जब मिले।"

"ये खेल-तमाशे, मेले-ठेले और त्योहार सब अमीरों के लिए हैं। सदा मेला अमीर का और सदा मुहर्रम……।"

नूरे के अब्बा ने कहा; लेकिन वाक्य पूरा होने से पहले ही अमीर-अली ने उसके मुँह की बात छीन ली। चाय का गर्म घूंट भीतर जाते ही उसका खून हरकत में आया और वह उमंग में भरकर बोला—

"ख्वाजा तेरा मेला निकला जाय, तभी तो कहा है।"

"मैला !" मरियम ने मुँह बिगाडकर कहा।

"मैला नहीं, मेला।" अमीर अली ने उसे शुद्ध करना चाहा। वह जान-बूझकर कह रही थी, इसलिए मुँह बनाकर और एक-एक अक्षर पर जोर देकर फिर कहा—

"नहीं, मै…ला।"

उसने कपड़े में लिपटी हुई दो बासी रोटियाँ निकालीं और उन्हें तोड़कर सब में बाँट दिया। नूरे ने अपने भाग के टुकड़े को जल्दी-जल्दी दाँत से काटा और भरा हुआ मुँह ऊपर को उठाकर "पच-पच" करने लगा। उसकी आँखें ढीड़ से भरी हुई थी; उसने सुबह उठकर उन्हें पानी से नहीं धोया था। फिर वह कुत्ते को खाने में सम्मिलित होने की दावत देने लगा। कुत्ता दुम हिलाता हुआ पास आ बैठा और नूरे ने एक कौर तोड़कर उसके आगे डाल दिया।

"हम फ़कीर हैं; अपने मन की करते हैं।" नूरे के अब्बा ने कहा। एक कौर निगलकर और चाय का घूंट पीकर फिर बोला, "पीर-फकीर फिजूल नहीं होते उनमें भी कुछ करामात होती है। कौन कहने जाता है किसी से कि तुम आओ; मेरे सामने सिर झुकाओ। फकीर किसी को बुलाने नहीं जाता। उसे किसी से कोई गरज नहीं है। जब मुसीबत

है, तो लोग खुद भागे आते हैं। वरना ... पर तवक्कुल (भरोसा) रखो। खुदा के हुक्म के वगैर तो पीर भी कुछ नहीं कर सकता।"

उसने एक के बाद दूसरा, कई कौर तोड़े और उन्हें मुंह में डालकर निगल गया; और फिर ऊपर से चाय उँडेलकर उन्हें कंठ से नीचे उतारा। इसके बाद इत्मीनान की साँस ली; उसकी आँखों में एक प्रतिभा, एक चमक उत्पन्न हुई और बोला—

"मैं ये बहुत बारीक बातें कर रहा हूँ; जिन्हें समझने के लिए अक्ल चाहिए, दिमाग चाहिए; मगर लोग सोचते हैं, फ़कीर बक रहा है। पागल है, टुटपूंजिया है। फ़कीर टुटपूंजिया नहीं है। मैंने दुनिया देख रखी है। ज़माने के हेर-फेर, ऊँच-नीच सब जानता हूँ। देखिये, अंग्रेज़ बहादुर है, इसलिए उसने आठ सौ साल तक राज़ किया है और अब भी कर रहा है। मैं सच कहता हूँ कि अब भी हुक्म उसी का चलता है। उसे खुद यहाँ आने की ज़रूरत नहीं, काम हमारे देसी आदमी करते हैं। उसे जो कुछ कराना होता है, वहीं से कहला भेजता है। आज भी एक गोरा यहाँ परेड ग्राउँड में आकर खड़ा हो जाय, तो किसी की हिम्मत नहीं कि उसके सामने दम तो साध ले।"

वह ये तमाम बातें एक ही साँस में कह गया। उसकी आवाज़ में किसी प्रकार का उतार-चढ़ाव पैदा नहीं हुआ। वह उकड़ूँ बैठा था। बाहें घुटनों के गिर्द डाल रखी थीं। जब बोलता था, तो दाढ़ी हिलती थी और बालों में अटके हुए रोटी के दो नन्हें-नन्हें टुकड़े हिलते थे। उसने नाश्ते से निपटकर दाढ़ी पर हाथ नहीं फेरा था, जिससे चाय के कुछ कण भी उसमें समा गये थे। इसी उपेक्षा के कारण दाढ़ी उलझ गई थी और बालों का रंग भी मटमैला हो गया था। आँखों का रंग मटमैला था; इसलिए उनमें उत्पन्न होने वाली भावनाओं का अनुमान लगाना सम्भव नहीं था। उसने दायाँ हाथ ऊपर उठाया और हिलाते हुए कहना शुरू किया—

"यह जामा मस्जिद, यह लाल किला और ताजमहल का [illegible] इस्लाम की नाक है। उन्हीं की बदौलत मुसलमान ज़िन्दा है। वे न होते तो आज हिंदुस्तान में एक भी मुसलमान मौजूद न होता।"

"कोई माई का लाल हो, तो बना दे ऐसी मस्जिद! [illegible] जायगी। कोई आसान काम नहीं है। अंग्रेज़ भी नहीं बना सके!" अमीर अली छाती ठोककर बोला।

"लखपति और करोड़पति तरसते रह जाते हैं; उन्हें जामा मस्जिद को देखना तक नसीब नहीं होता।"

नूरे के अब्बा की मटमैली आँखों में गर्व और स्वाभिमान चमक उठा था।

और एक दिन जमाल और अब्दुल समद आपस में यों ही बातें कर रहे थे। अब्दुल समद बोला—

"......इधर और उधर दोनों तरफ़ यही कुछ हो रहा है। ख़ुदा की क़सम, दुनिया पर शैतान की हकूमत है।"

कौशल ने केवल अन्तिम वाक्य अर्थात् 'दुनिया पर शैतान की हकूमत है'—स्पष्ट रूप से सुना था। वह जानना चाहता था कि ये शब्द किस सम्बन्ध में कहे गए हैं। बोला—

"क्या बात है जमाल! कौन है शैतान?"

"बाबू जी हिन्दू और मुसलमान दोनों में शैतान भरे पड़े हैं। जिनके ऐमाल (कृत्य) बुरे हैं, वही शैतान है।"

जमाल ने उत्तर दिया। सर्द हवा चल रही थी, इसलिए उसने कनटोप पहन रखा था और अपने लेलों को भी कपड़े उढ़ा रखे थे। वह एक को बायें बाज़ू में और दूसरे को दायें में दबाये बैठा था। वे भी चुपचाप पड़े थे, शायद शैतानियत के बारे में उसका [illegible] समझने का प्रयत्न कर रहे थे। उसने बीड़ी का कश लगाकर फिर कहा—"यह हैदराबाद का निज़ाम सबसे बड़ा शैतान है। उसने हमेशा गद्दारी की है। जब मुसलमानों का राज आया तो इसके [illegible] दक्खिन को [illegible]

गड़वा दिया जायगा। यह वही निज़ाम है, जिसने हमारे सुलतान टीपू को मरवाया था, वरना सुलतान टीपू अंग्रेज़ों के कब्ज़े में कभी न आता।"

कौशल ने उसकी ओर देखा और सोचने लगा। दूसरे ही क्षण उसके ज़ेहन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि राख के नीचे भी चिनगारियाँ छुपी रहती हैं।

हैदराबाद पर भारतीय सरकार के आक्रमण और कब्ज़े की कहानी अभी नई और ताज़ा थी। कल ही एक अख़बार ने इस विषय पर आलोचना करते हुए लिखा था कि निज़ामी सरकार ने पहले ही से भारत-सरकार के साथ साँठ-गाँठ कर रखी थी। मुक़ाबला तो महज़ एक ढोंग था; दुनिया की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश थी, वरना वह ख़ुद उद्दण्ड रज़ाकारों की ताक़त को तोड़ना चाहता था और कम्युनिस्टों से भयभीत था।

जमाल बहुत ही दिलचस्प आदमी था। हरवक़्त शहज़ादे और शहज़ादी से खेलता रहता था; कभी दाने और कभी घास खिलाया करता था। वह जितना इनका ध्यान रखता था और लालन-पालन करता था, उतना शायद कभी रशीद का भी नहीं किया होगा। जब इनसे फ़ुरसत मिलती थी, तो ख़ुदी को भुलाकर ख़ुदा में डूब जाता था और मस्त होकर गाया करता था, दुनिया और उसके धंधों से एकदम उदासीन जान पड़ता था। कौशल ने आज अपनी आँखों देख लिया कि यह उदासीनता और आध्यात्मिक उन्माद पराजित और त्रस्त आत्मा के लिए एक कृत्रिम आवरण होता है। कई बार इस आवरण को तोड़कर शुद्ध और पवित्र मनुष्य बाहर निकल आता है और अपने आपको स्वस्थ बनाये रखने के लिए खुली वायु में साँस लेता है।

१३

बहुत दिन बीत गये, इब्राहीम से भेंट नहीं हुई थी। वास्तव में कौशल अब उससे मिलने के लिए कुछ उत्सुक भी नहीं था। वह जब मिलता, वही पुरानी बातें दुहराया करता था—"वह देखो अमुक फ़क़ीर भटकता

हुआ इधर आ निकला था। मैंने उसे अपने पास बुलाया, प्यार किया। यह मेरा ही बन है, कोई दूसरा नहीं रहने पाता। ये सब लोग निकम्मे हैं। इन फ़क़ीरनियों का क्या है: अब उनके पास बैठी है, कल उनके पास जा बैठेगी।"

अब अनायास ही उससे भेंट हो गई। वह किसी काम से बाज़ार जा रहा था। उसने कौशल का अभिवादन किया और हाथ मिलाते हुए बोला—'शाम को मिलियेगा, हम आपको एक ज़रूरी बात बतायेंगे।"

कौशल ने मिलने का वादा किया और उन मज़दूरों को देखने लगा, जो मैदान के पूर्वी कोने पर मिट्टी खोद रहे थे। उनकी तादाद पन्द्रह-बीस होगी। दो-तीन औरतें और बाक़ी सब मर्द थे। कुछ मिट्टी खोद रहे थे और कुछ टोकरों में भर-भरकर उसे उठा रहे थे और एक दूसरे स्थान पर ढेर लगा रहे थे। एक बाबू किस्म का व्यक्ति उनकी निगरानी कर रहा था। उससे दरियाफ़्त करने पर मालूम हुआ कि यहाँ सर्कस का खेल होगा और उसके लिए यह जगह किराये पर ली गई है।

"आप यह मिट्टी वहाँ ढेर करने के बजाय इस गढ़े में क्यों नहीं भर देते, ताकि ज़मीन हमवार हो जाय।"

"हमें तो जो हुक्म मिला है, वही करेंगे। उन्होंने हमसे कहा है कि जितनी मिट्टी खोदो, वापस उसी जगह डाल देना।"

इस जगह से ज़मीन काफ़ी ऊँची थी और दो-तीन गज पर एक गहरा गढ़ा था। अगर मिट्टी दोबारा यहाँ डालने के बजाय उस गढ़े में भर दी जाती, तो उससे भूमि समतल हो जाती और दोबारा मिट्टी उठाने का परिश्रम भी न करना पड़ता। किन्तु सरकारी कर्मचारी मामूली-मामूली तब्दीलियों से भी डरते हैं और जो चीज़ जिस अवस्था में उनके सुपुर्द की जाती है उसे वैसा ही रहने देते हैं। बुद्धि से काम लेना पाप और दोष है और-यही शायद सबसे बड़ी वफ़ादारी और स्वामि-भक्ति है।

भूमि पक्की और सख़्त थी। घास की जड़ें दूर-दूर तक फैली हुई

ग्रौर उन्होंने मिट्टी को अपनी गिरफ़्त में इतनी मज़बूती से जकड़
ा था कि सीमेंट से भी अधिक कठोर बना दिया था। कौशल के
कट जो मज़दूर धरती खोद रहा था, उसे बहुत अधिक ज़ोर लगाना
ड़ रहा था। गेंती घास की जड़ों में उलझ-उलझकर रह जाती थी
थवा किसी ईंट-पत्थर से टकराकर रह जाती थी। जिस प्रकार
रम्परागत संस्कार और रूढ़िवाद की जड़ें और ईंट-पत्थर समाज की
उन्नति में रुकावट बनी रहती हैं, उसी प्रकार यह घास और ईंट-पत्थर
खुदाई में रुकावट बने हुए थे। किन्तु नौजवान मज़दूर की लगातार चोटें
सारी अड़चनों को दूर हटा रहीं थीं। वह खुद पसीना-पसीना हो गया
था; पर उसने मनों मिट्टी खोद डाली थी; अभी और खोद रहा था।
कौशल उसी गेंती को रुकावटों से टकराते और उन्हें तोड़ते देख रहा था।
तमाम मज़दूर तन्मयता और सुव्यवस्थित रीति से धरती को खोदने का
काम कर रहे थे। कुछ मिट्टी खोद रहे थे; कुछ टोकरों में भर रहे थे
और कुछ उठा-उठाकर ले जा रहे थे। "देखो, तुम यों वक्त का हर्ज़
हो।"

मिट्टी टोकरों में भरने वाले एक मज़दूर के फावड़े से दस्ता निकल
गया था और वह उसे दुरुस्त करने बैठ गया था। सर्कस कम्पनी का
मुंशी लपककर उसके पास आया और जल्दी-जल्दी दस्ता डालने की
हिदायत करने लगा, ताकि समय नष्ट न हो।

कौशल दस-बारह मिनट तक यहाँ खड़ा मज़दूरों को मेहनत करते
और धरती खोदते देखता रहा। जब वह चलने लगा तो एक आदमी ने
उससे पूछा—उसकी तरह कुछ और लोग भी वहाँ जमा हो गए थे—

"यहाँ क्या होगा ?"

"सर्कस आयेगा।"

"सर्कस कोई तमाशा होता है ?"

"हाँ, कभी देखा नहीं तुमने ? घोड़े होते हैं, हाथी होते हैं और शेर
नाचते हैं।"

"नहीं, मैंने कभी नहीं देखा। ये टिकट लेते होंगे ?"

"हाँ, टिकट तो जरूर लेंगे।"

वह आदमी कुछ बोला नहीं। घोड़े, हाथी और शेरों के नाच की बात सुनकर उसके मन में तमाशा देखने का चाव उत्पन्न हुआ था और आँखों में जो चमक आ गई थी, वह एकाएक बुझ गई। वह सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष का और सुगठित शरीर का स्वस्थ व्यक्ति था। उनके हाथ, पाँव, टाँगों और बाँहों पर कालिख पुती हुई थी; घुटनों तक जो तहमद बाँध रखा था, वह भी काला था, और सिर पर बँधा हुआ अंगोछा भी काला था। शरीर के जो भाग इन कपड़ों से बाहर दिखाई देते थे, वे सब काले थे। लेकिन ध्यान से देखने पर मालूम होता था कि उसका रंग काला नहीं है, बल्कि वह गौरवर्ण है।

"कोयले की दुकान पर काम करते हो ?"

"हाँ।"

"रहते कहाँ हो ?"

"वहीं पड़ रहता हूँ। घर मेरठ में है; यहाँ मजदूरी करने आया हूँ।"

"मजदूरी क्या मिलती है ?"

"ग्राहकों के कोयले उठाकर छोड़ आता हूँ। वे जो दे देते हैं, वही मिलता है।"

"और दुकान का काम मुफ्त करते हो ?"

"जी हाँ।"

उसने उत्तर दिया और कुछ अधिक कहते-कहते रुक गया। वह जब बात नहीं करता था, ओठ तब भी खुले रहते थे। वे अब भी खुले हुए थे और इसी कारण वह बहुत निरीह जान पड़ता था।

शाम को चार बजे जब कौशल इब्राहीम से मिलने आया, तो सर्कस के लिए भूमि खोदने की योजना स्थगित कर दी गई थी। कम्पनी के मालिक अथवा किसी दूसरे अधिकारी व्यक्ति ने आकर मौका देखा,

तो उसने मैदान के पश्चिमी कोने में सर्कस लगाना पसंद किया। वहाँ ज़मीन कच्ची तो थी; लेकिन हमवार थी। इस प्रकार मजदूरी और समय दोनों की बचत होती थी। सर्कस गाजियाबाद से आ रहा था। वहाँ अब एक भी दिन ठहरने की गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि कम्पनी आमदनी के बिना खर्च सहन नहीं कर सकती थी। इस हमवार जगह पर प्रबंध शीघ्र हो सकता था और वह होने लगा।

इब्राहीम नूर अल्लाह शाह की कब्र के निकट बैठा किसी दूसरे व्यक्ति से बातें कर रहा था। कौशल के पहुँचते ही वह व्यक्ति चला गया और इब्राहीम ने कौशल का स्वागत किया।

"कहो, क्या बात बताना चाहते थे?" कौशल बोला।

"हमारा ऐसा ख्याल है कि तुम जो काम करना चाहते हो, उसमें तुम कामयाब हो जाओगे।" गर्दन को तनिक दाईं ओर झुकाकर इब्राहीम ने शून्य में झाँकते हुए कहा।

"कौन सा काम?"

"जो कुछ भी तुम करना चाहते हो।"

"हम तो इनक़लाब चाहते हैं।"

"बस हो जायगा। समझ लो फ़क़ीर की दुआ है।"

कौशल उसकी ओर देखने लगा—देखता रहा। उसे इब्राहीम के मुख पर स्वाभिमान के स्थान पर चापलूसी की झलक दिखाई दी। वह इतना भी नहीं समझता था कि इनक़लाब का मतलब क्या है और यदि समझाने की कोशिश भी की जाय, तो भी नहीं समझ सकता। उसे सिर्फ़ दुआ देने से गर्ज़ थी और वह उसने बड़ी उदारता से दे दी। उसे क्या मालूम कि इनक़लाब न कभी दुआओं से आते हैं और न कभी रुकते हैं।

"क्या तुम्हें पीर साहब ने बताया है?" कौशल ने पूछा।

"हाँ, इसे पीर साहब का ही कहा समझो। आज जुमेरात (बृहस्पति) है ना! हर जुमेरात की शब को वे मुझे ज़रूर ख्वाब में दिखाई देते हैं और मैं कोई भी एक बात पूछ लूँ उसका जवाब दिया

करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि यह बाबू जी जो कुछ दिनों से इधर आ रहे हैं, क्या उनका काम बन जायगा ? उन्होंने जवाब दिया कि हां, वह जल्दी ही कामयाब हो जावेंगे। बस, मैं उन्हीं की बात तुमसे कह रहा हूँ।"

वह मुस्करा रहा था और उसकी मुस्कराहट में मूर्खतापूर्ण उन्माद था।

"यही बात बताना चाहते थे ?"

"हां ! हमने सोचा कि बाबू जी हमारे मरब्बी हैं। हम पीर साहब से उनकी बात तो पूछ लें।"

"शुक्रिया !" कौशल ने कहा और उठकर चल दिया।

इब्राहीम अपनी जगह पर बैठा मुस्कराता रहा।

१४

यह जुमेरात का दिन था। जुमेरात को फ़कीरों की ईद भी कहा जा सकता है। वे छह दिन, उसके आने की प्रतीक्षा में व्यतीत करते हैं। इस रोज़ जामा मस्जिद के सामने कितने ही ख़ुदा के बंदे—धनी और सम्पन्न व्यक्ति खैरात बांटते हैं। जो सैकड़ों फ़कीर जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर पड़े रहते हैं, उनके अलावा इधर-उधर से दिल्ली के तमाम हिस्सों से बहुत से फ़कीर आकर जमा हो जाते हैं। खैरात लेते हैं और दुआएं देते हैं। यों दरिद्र और मुहताज होते हुए भी उनका सम्बन्ध धनी वर्ग से स्थापित रहता है और दिन-दिन सुदृढ़ होता चला जाता है। फ़कीर सिर्फ़ दुआएं ही नहीं देते बल्कि हृदय से चाहते हैं कि जो लोग भागवान और उदार हैं, ख़ुदा उन्हें दसगुनी दौलत दे। जब खैरात बाक़ायदगी से मिलती रहती है, तो वे समझने लगते हैं कि उनकी दुआएं ख़ुदा के दरबार में सुनी जा रही हैं; मंज़ूर हो रही हैं और अमीरों को अधिक धन मिल रहा है।

यों वे खैरात पर अपना हक़ समझते हैं।

कौशल उस दिन नौ-दस बजे मैदान में आया था।

तो उसने मैदान के पश्चिमी कोने में सर्कस लगाना पसंद किया। वहाँ ज़मीन कच्ची तो थी; लेकिन हमवार थी। इस प्रकार मज़दूरी और समय दोनों की बचत होती थी। सर्कस गाजियाबाद मे आ रहा था। वहाँ अब एक भी दिन ठहरने की गुंजाइश नहीं थी, क्योंकि कम्पनी आमदनी के बिना खर्च सहन नहीं कर सकती थी। इस हमवार जगह पर प्रबंध शीघ्र हो सकता था और वह होने लगा।

इब्राहीम नूर अल्लाह शाह की कब्र के निकट बैठा किसी दूसरे व्यक्ति से बातें कर रहा था। कौशल के पहुँचते ही वह व्यक्ति चला गया और इब्राहीम ने कौशल का स्वागत किया।

"कहो, क्या बात बताना चाहते थे ?" कौशल बोला।

"हमारा ऐसा ख्याल है कि तुम जो काम करना चाहते हो, उसमें तुम कामयाब हो जाओगे।" गर्दन को तनिक दाईं ओर झुकाकर इब्राहीम ने शून्य में झाँकते हुए कहा।

"कौन सा काम ?"

"जो कुछ भी तुम करना चाहते हो।"

"हम तो इनक़लाब चाहते हैं।"

"बस हो जायगा। समझ लो फ़क़ीर की दुआ है।"

कौशल उसकी ओर देखने लगा—देखता रहा। उसे इब्राहीम के मुख पर स्वाभिमान के स्थान पर चापलूसी की झलक दिखाई दी। वह इतना भी नहीं समझता था कि इनक़लाब का मतलब क्या है और यदि समझाने की कोशिश भी की जाय, तो भी नहीं समझ सकता। उसे सिर्फ़ दुआ देने से गर्ज़ थी और वह उसने बड़ी उदारता से दे दी। उसे क्या मालूम कि इनक़लाब न कभी दुआओं से आते हैं और न कभी रुकते [illegible]।

"क्या तुम्हें पीर साहब ने बताया है ?" कौशल ने पूछा।

"हाँ, इसे पीर साहब का ही कहा समझो। आज जुमेरात (बृहस्पति) है ना! हर जुमेरा [illegible] को [illegible] ज़रूर [illegible] में दिखाई देते हैं और मैं कोई भ[illegible]

करते हैं। मैंने उनसे पूछा कि यह बाबू जी जो कुछ दिनों से इधर आ रहे हैं, क्या उनका काम बन जायगा ? उन्होंने जवाब दिया कि हाँ, वह जल्दी ही कामयाब हो जायेंगे। बस, मैं उन्हीं की बात तुमसे कह रहा हूँ।"

वह मुस्करा रहा था और उसकी मुस्कराहट में मूर्खतापूर्ण उन्माद था।

"यही बात बताना चाहते थे ?"

"हाँ ! हमने सोचा कि बाबू जी हमारे मरब्बी हैं। हम पीर साहब से उनकी बात तो पूछ लें।"

"शुक्रिया !" कौशल ने कहा और उठकर चल दिया।

इब्राहीम अपनी जगह पर बैठा मुस्कराता रहा।

१४

यह जुमेरात का दिन था। जुमेरात को फ़क़ीरों की ईद भी कहा जा सकता है। वे छह दिन, उसके आने की प्रतीक्षा में व्यतीत करते हैं। इस रोज़ जामा मस्जिद के सामने कितने ही खुदा के बंदे—धनी और सम्पन्न व्यक्ति खैरात बांटते हैं। जो सैंकड़ों फ़क़ीर जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर पड़े रहते हैं, उनके अलावा इधर-उधर से दिल्ली के तमाम हिस्सों से बहुत से फ़कीर आकर जमा हो जाते हैं। खैरात लेते हैं और दुआएं देते हैं। यों दरिद्र और मुहताज होते हुए भी उनका सम्बन्ध धनी वर्ग से स्थापित रहता है और दिन-दिन सुदृढ़ होता चला जाता है। फ़कीर सिर्फ दुआएं ही नहीं देते बल्कि हृदय में चाहते हैं कि जो लोग भागवान और उदार हैं, खुदा उन्हें दसगुनी दौलत दें। जब खैरात बाक़ायदगी से मिलती रहती है, तो वे समझने लगते हैं कि उनकी दुआएं खुदा के दरबार में सुनी जा रही हैं; मंजूर हो रही हैं और अमीरों को अधिक धन मिल रहा है।

यों वे खैरात पर अपना हक़ समझते हैं।

कौशल उस दिन नौ-दस बजे मैदान में आया था। फ़क़ीर इस

नाश्ता किया करते थे। लेकिन आज मैदान खाली था। अकेली
...यम बैठी क्षितिज की ओर झाँक रही थी।

"सब लोग कहाँ गये हैं ?" कौशल ने दरियाफ़्त किया

"आज जुमेरात है; खैरात लेने गये हैं।"

वह बोली और फिर क्षितिज की ओर देखने लगी।

जुमेरात के दिन इतनी खूराक बँटती थी कि फ़कीर बिरयानी और पुलाव प्यालों में भर-भरकर झोंपड़ों में रख छोड़ते थे और उसे कई दिन तक खाते रहते थे। रफ़ीक़ प्रायः इसी खूराक पर जीवित रहता था। यदि सप्ताह में एक-दो रोज़ खाने को न मिले तो उपवास कर लेता था। जितने दिन भोजन चलता था, पत्नी उससे प्रसन्न रहती थी। भोजन समाप्त होते ही लड़ाई छिड़ जाती थी। पत्नी को उपवास करना पसंद नहीं था। वह खाने को माँगती थी और जब रफ़ीक़ नहीं खिलाता था, वह उससे उलझ पड़ती थी। भोजन के अतिरिक्त लड़ाई-झगड़े का एक और भी कारण था; और वह यह था कि उसे जड़-जीवन से घृणा थी। यह भी क्या, मनुष्य घास-फूस की तरह पड़ा रहे; जो कुछ मिल जाय, खा ले; वरना उपवास करे। लेकिन रफ़ीक़ के साथ लड़ने-झगड़ने के अलावा ज़िन्दगी को हरकत में लाने और अपने मन का क्षोभ प्रकट करने का और कोई साधन अथवा उपाय नहीं था। इसलि... रफ़ीक़ को दो-चार गालियाँ निकालकर उसकी दुःखित आत्मा को सांत्व... प्राप्त होती थी।

उस दिन परेड ग्राउंड में खास चहल-पहल होती थी। जंगल... मंगल का सा दृश्य दिखाई देता था। कलीम अल्लाह के मज़ार... क़व्वालियाँ सुनने और नयाज़ बाँटने लोग-बाग इधर-उधर से आ... थे। कुछ लोग सिर्फ़ मन बहलाने आते थे। वे अपने दुम्बे और ब... साथ ले आते थे, जिन्हें वे कुर्बानी के लिए पाल रहे होते थे। वे... साथ खेलते और उन्हें घास खिलाते थे। इस्लामी परम्परा और... के नियमों से परिचित लोग भी आते थे। वे पीर-फ़क़ीरों के...

पर पहुँचे होने का दावा करते थे और अपने गिर्द भीड़ जमा करके बैठ जाते थे। मज़हबी लोग उनकी बात ध्यान से सुनते थे और वे अपने इन श्रद्धालुओं के लिए ज्ञान और आध्यात्मिकता का दरिया बहा देते थे। बातें भी करते थे और सुनने वालों पर मुस्करा-मुस्कराकर कृपादृष्टि भी डालते जाते थे और उनसे श्रद्धा और प्रशंसा प्राप्त करके गद्गद् हो उठते थे।

इस प्रकार की भीड़ जहाँ-तहाँ कई जगह लग जाती थी। कई बार उनमें से किन्ही दो फ़कीरों में बहस भी हो जाती थी, जो धीरे-धीरे अच्छे-खासे दंगल का रूप धारण कर लेती थी। दोनों ओर के पहलवान खम ठोंक-कर आगे बढ़ते थे और एक दूसरे को पछाड़ देने की कोशिश करते थे। वाद-विवाद के इन अखाड़ों में प्रमाण और युक्ति के संगत-असंगत होने के बजाय इस बात का अधिक ध्यान रखा जाता था कि श्रोताओं को किस बात से खुश किया और हँसाया जा सकता है। जो फ़कीर अपनी बात और दलील से अधिक-से-अधिक लोगों को हँसाने में सफल होता था, उतना ही प्रतिद्वन्द्वी अपने आप को अप्रतिभ और लज्जित महसूस करता था। विरोधी पक्ष की बातों से चिढ़ जाना, झुँझलाकर लड़ने पर उतर आना पराजित हो जाने का साफ़ ऐलान समझा जाता था।

वैसे तो शाम को नित्य ही पतंगबाज़, गप-शप करने वाले, तमाश-बीन और सब प्रकार के लोग परेड ग्राउँड में इकट्ठे होते थे और घंटे-दो-घंटे दिल बहलाकर चले जाते थे। लेकिन जुमेरात को तो लगता था कि लश्कर-के-लश्कर उतर आए हैं और उन्हें अध्यात्मवाद और ईश्वरीय ज्ञान की सारी समस्याएं आज ही हल करनी हैं। लोगों की इस भारी भीड़ में बुन्दे साईं भी खास रोब-दाब के साथ इधर-से-उधर घूमता दिखाई देता था। सिर पर बड़ा-सा पगड़, कमीज़ और वास्केट पहने, हाथ में कड़े तस्बीह (माला) लटकाये और हाथ में फ़कीरी का मोटा-सा सोटा लिये 'या अली ! या अली !' का [illegible] था। सफ़ेद कपड़ों वाले किसी समृद्ध व्यक्ति

जा खड़ा होता, विचित्र और आकर्षक ढंग से सलाम करने के बाद दो-चार बातें करता और अन्त में निस्संकोच लेकिन नम्र स्वर में कहता, "साहब हमें बीड़ी पिला दीजिये।" उसकी आध्यात्मिक वेषभूषा और मुस्कराती हुई आँखें देखकर इनकार करना कठिन हो जाता और 'साहब' अपने सामर्थ्यानुसार आना, दो आने, चार आने, उसके हाथ पर रख देता और वह 'या अली! या अली!!' का शब्द करता हुआ आगे बढ़ जाता।

उस दिन खोमचे वाले भी अधिक संख्या में आते थे। वे प्रायः मूंगफली, चने, गाजर और मूली बेचते थे और कुछ केले और संतरे वाले भी आते थे। महँगी चीज़ें यहाँ नहीं बिकती थीं। लोग मूंगफली और चने जेबों में भरकर इधर-उधर घूमते अथवा सामने रखकर बैठ जाते। आपस में गप्पें भी होतीं और चबेना भी।

मैदान केले और संतरे के छिलकों, काग़ज़ और शीशे के टुकड़ों, टूटे हुए परों और छोटा-छोटी हड्डियों से पटा रहता था। ये सब चीज़ें लोगों के पाँव तले आकर पिसती रहती थीं और मैदान का भाग बनती रहती थीं और उसे स्वस्थ और समर्थ बनाती थीं। मनुष्य सदियों से उसके सीने को रौंदता आया था; घोड़ों और फ़ौजों ने उसे पामाल किया था; अब भी हज़ारों लोग उसमें कूदते और रौंदते फिरते थे, मगर वह इत्मीनान से लेटा हुआ था। इन क़दमों से उसकी तनिक भी क्षति नहीं होती थी, बल्कि एक साथ बहुत से लोगों को एकत्रित देखकर गद्गद् हो उठता था। उनकी चापों में वह जिन्दगी की धड़कन सुनता था। उसे अपना समस्त अस्तित्व हरकत में आता हुआ मालूम पड़ता था। एक करवट—महान् करवट की आकांक्षा उसके मन में जाग उठती थी।

मैदान में कई जगह कीड़ों की बाँबियाँ बनी हुई थीं। धार्मिक व्यक्ति उन पर आटा, चावल अथवा कोई और अनाज फेंक जाते थे। कीड़े इस अनाज को उठाकर अपने गोदामों में भर लेते थे। कौशल उनकी मेहनत और परिश्रम को देखा करता था। जब तक वे इस अनाज

को उठा-उठाकर भीतर नहीं ले जाते थे, उनकी चिड़ियां और गुरग़लों में होड़ लगी रहती थी।

मज़ार की नुक्कड़ पर पान-बीड़ी की एक दुकान थी। दुकानदार सफ़ेद कपड़े पहनता था और कुछ पढ़ा-लिखा भी था। उसके पास जो ग्राहक या दूसरे लोग आ बैठते थे, वह उन्हें अख़बार की ख़बरें सुनाया करता था। और साथ-साथ उन पर टीका-टिप्पणी भी करता जाता था, जिसमें अपने ज्ञान और बुद्धि का परिचय देना अभिप्रेत होता था। एक दिन उसने यह ख़बर सुनाई—"जमुना के पानी की बाढ़ हज़ारों गांव बहाकर ले गई।" और फिर टिप्पणी की, "लोग अपने गुनाहों की सज़ा पा रहे हैं। ख़ुदा गुनाहों की सज़ा ज़रूर देता है।" वह पुश्त-दर-पुश्त से इसी जगह काम कर रहा था। जहाँ उसे यह दुकान विरासत में मिली थी, वहाँ यह ज्ञान भी विरासत में मिला था। वह भले ही दुकानदार था; पर उसका आध्यात्मिक पद किसी भी पीर-फ़क़ीर से कम नहीं था, वरना वह ख़ैरात के पैसों से नफ़ा कैसे कमा सकता था?

जुमेरात को दुकान के निकट दो-तीन फूलों वाले आ बैठते थे। लोग ये फूल मज़ार पर चढ़ाने के लिए ख़रीदते थे। मज़ार के दरवाज़े पर फ़क़ीर दो पंक्तियों में बैठ जाते थे। सिर्फ़ इस मैदान में रहने वाले ही नहीं, आसपास की बस्तियों और पार्कों से दूसरे फ़क़ीर भी आ जाते थे। क़व्वाली शुरू होने से घंटों पहले आमने-सामने जमकर बैठ जाते थे। हर एक फ़क़ीर यह कोशिश करता था कि उसे दरवाज़े के निकट-तम स्थान मिले, क्योंकि ख़ैरात दरवाज़े से बंटनी शुरू होती थी। कई बार आख़िर तक पहुँचने-पहुँचते दाता की उदारता का दरिया सूख जाता था और अन्त में बैठे हुए फ़क़ीर बिना ख़ैरात के रह जाते थे।

फ़कीर चुपचाप बैठे क़व्वालियाँ सुनते, हाथ फैले रहते, ख़ैरात पाते और आँखों से दुआएँ निकलतीं।

उस दिन भी जुमेरात थी। क़व्वाली हो रही थी। फ़क़ीर दो पंक्तियों में मज़ार के दरवाज़े पर बैठे थे। उनमें मैदान के

शामिल थे। वे बुझी-बुझी आँखों से इधर-उधर देख रहे थे। लोग अब भी आ रहे थे। मजार के अंदर का सेहन भर गया था। जंगले के बाहर भी काफ़ी भीड़ जमा हो गई थी। औरतों को अंदर आने की मनाही थी। वे दूर खड़ी-खड़ी मजार को देख रही थीं और अपनी आत्माओं को भक्ति-भाव से संतुष्ट कर रही थीं। कव्वाली के बोल थे—

जहाँ रक्स करती है रूहे मुहब्बत,
मैं सरहद्दे मंजिल पै अब आ गया हूँ।
सलामत रहे जुस्तजू-ए मुहब्बत,
जिसे ढूंढ़ता था उसे पा गया हूँ।

कव्वाल झूम रहे थे और ताल पर ताल दे रहे थे। लोग सुन-सुनकर आनन्दविभोर हो रहे थे। भूखी आत्माओं का इसी बहाने संगीत का रसपान हो रहा था।

१५

कौशल एक दिन सवेरे-सवेरे—बहुत ही सवेरे उठकर मैदान में आया। दिसम्बर के आख़िरी दिन थे। सर्दी का ज़ोर बढ़ गया था। रात भर हवा बहुत तेज़ चलती रही थी। कमरे से बाहर निकलते डर लगता था। वह रात भर रजाई और कम्बल में दुबका रहा था। दोहरा ओढ़ना होने पर भी जाड़ा महसूस होता था। वह पड़ा-पड़ा सोचता रहा था कि ऐसे में मैदान के वासियों पर क्या गुज़रती होगी? क्या गुज़रती होगी यह देखने के लिए उसने फ़ैसला किया कि दिन निकलने से पहले-पहले मैदान में जायगा और अपनी आँखों देखेगा कि ये बेघर लोग रात कैसे काटते हैं।

जब वह मैदान में पहुँचा बहुत सवेरा था। सूरज निकलने में अभी देर थी। लेकिन किले के दाईं ओर पेड़ों के झुरमुट में उषा की रक्ताभ फैली हुई थी और उसमें से उजाले का स्रोत-सा फूटा पड़ता था। फ़िज़ा निस्तब्ध और स्थिर थी। हवा तेज़ नहीं थी। उसमें ठंडी के बावजूद रूह को गुदगुदाने वाली ताज़गी थी। कुछ ऐसा लगता था जैसे रात को किसी

ने मैदान में जादू फूंक दिया हो।

कौशल के हाथ में अंग्रेजी का अख़बार था। वह सुबह उठकर अख़बार पढ़ता था। अब साथ उठा लाया था कि मैदान में बैठकर सूर्योदय का दृश्य देखेगा और अख़बार पढ़ेगा। घास ओस-कणों से भीगी हुई थी। तमाम फ़िज़ा भीगी-भीगी-सी मालूम होती थी।

वह पेड़ के नीचे जाकर खड़ा हो गया। इस समय कोई भी फ़क़ीर लेटा हुआ नहीं था। सारी बस्ती जाग उठी थी और सब लोग अपनी-अपनी जगह पर अपने संक्षिप्त ओढ़नों में लिपटे बैठे थे। कलंदर की धूनी में आग सुलग रही थी। दो-चार आदमी इर्द-गिर्द बैठे ताप रहे थे। झुनिया और उसके पति ने भी आग सुलगा रखी थी और वे अपने बिस्तर पर बैठे-बैठे और ओढ़नों में लिपटे-लिपटे रात का जाड़ा दूर भगा रहे थे। मरियम अलबत्ता आग जलाने की तैयारी कर रही थी। जमाल और अब्दुल समद के बाईं ओर दो फ़क़ीरनियाँ, जो अधेड़ उम्र की थीं और जिनके सिर के बाल पक रहे थे—किसी बात पर आपस में झगड़ रही थीं। वे दो-तीन दिन हुए इधर आई थीं। उनके साथ एक मर्द भी था, जो इस वक्त वहाँ मौजूद नहीं था।

उनके चेहरे पर असाधारण सर्दी का कोई विशेष प्रभाव मालूम नहीं होता था। जिस हालत में कौशल उन्हें हर रोज़ देखता था, उसी हालत में अब भी बैठे थे। जैसे पेड़ की टहनियों पर पक्षी सोते हैं और सुबह उठकर चहचहाते हैं, वैसे ही नीचे वे सोये थे और अब सन्तुष्ट और प्रसन्न दीख पड़ते थे। कहते हैं कि रात को घने वृक्षों के नीचे नहीं जाना चाहिए क्योंकि उनके नीचे भूत रहते हैं और वे आदमी से चिपट जाते हैं। लेकिन ये लोग रात भर इस घने पेड़ के तले सोते थे, उन्हें कोई भूत नहीं चिपटते; उनके सिर ज़रा नहीं चकराते। शायद जिस तरह वृक्ष रात को आक्सीजन खाते और कार्बन छोड़ते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी रात के समय आक्सीजन छोड़ते और कार्बन खाते हैं। जब एक विशेष वातावरण के अनुसार मनुष्य का स्वभाव बदल जाता है तो—

यह भी मुमकिन है कि प्राकृतिक क्रिया भी बदल जाती हो। जब उन्होंने अपने जीवन को पेड़ के जीवन के अनुसार बना लिया है, तो पेड़ के भूत उन्हें कैसे चिपट सकते हैं ?

"बाबू साहब ! क्या लिखा है अखबार में ? हमें भी तो सुनाइये।" जमाल ने कहा।

कौशल उसके करीब जा बैठा। वह अपनी पैबंद लगी रजाई में दुबका बैठा था और उसके दोनों लेले दोनों ओर उसके दायें और बायें पहलुओं में दुबके हुए थे। जिस प्रकार वे जमाल के शरीर से गर्मी हासिल कर रहे थे, उसी प्रकार उसे गर्मी पहुँचा भी रहे थे। जमाल बैठा बीड़ी पी रहा था। उसने कौशल को बीड़ी पेश करना उचित नहीं समझा; इसलिए अपनी गुदड़ी में से कैंची की सिगरेट की डिबिया और दियासलाई निकाल उसके सामने रख दी। कौशल ने धन्यवाद कहा और डिबिया वापस कर दी, क्योंकि वह सिगरेट नहीं पीता था।

जमाल की निगाहें अखबार पर जमी हुई थीं। कौशल पहले खुद पढ़ता था और फिर उसे ऐसी ख़बर का खुलासा करके सुना देता था, जो जनसाधारण के लिए दिलचस्प हो और जिसे जमाल समझ सकता हो; और जो ऐसी न हो, उसे वह छोड़ देता था। उदाहरणतया—हिन्द-चीन और बर्मा की जनता भी अपने अधिकारों और स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष कर रही थी; और खबर आई थी कि हिन्द-चीन के देशभक्त वीरों ने फ्राँसीसी साम्राज्यवादियों को मार भगाया है और उनसे दो बड़ी चौकियाँ छीन ली हैं। कौशल ने उसे यह खबर सुनानी चाही; लेकिन उसकी उदासीनता देखकर बीच में छोड़ दी। अखबार में एक आत्महत्या की खबर थी और अपने ही देश और राजधानी से सम्बन्धित थी। जमाल ने उसमें सबसे अधिक दिलचस्पी दिखाई। सब्ज़ीमंडी में एक जवान औरत ने अपनी दो वर्ष की बालिका के साथ अपने आप को जिन्दा जला लिया था। कारण यह था कि दो-तीन सप्ताह पहले उसके पति ने रेलवे पुल से कूदकर आत्म-हत्या कर ली थी, क्योंकि वह बेकार था।

अपना और अपने बीवी-बच्चे का पेट नही पाल सकता था। और अब उसकी पत्नी ने आत्म-हत्या कर ली थी कि जब मर्द ही गुजारे का कोई प्रबंध नही कर सका तो वह बेचारी औरत क्या कर सकती थी ? जमाल यह ख़बर सुनकर चौक उठा था। शायद सोच रहा था कि आदमी को काम न मिले, भीख तो मिल जाती है। आखिर मरने की क्या जरूरत थी ?

"आप ऊँची आवाज़ से पढते रहिए न।" अब्दुल समद ने कौशल से कहा।

"नही, अंग्रेज़ी अपने ही दिमाग में पढी जाती है।"

जमाल ने हाथ की अँगुलियो को चम्मच-सा बनाकर ज़ेहन के भीतर की ओर सकेत किया।

"लो, ऐसी क्या बात है ! क्या कभी किसी को अंग्रेज़ी पढ़ते नही सुना ?"

"हाँ, अंग्रेज़ी भी ऊँची पढी जाती है।" कौशल बोला और उसने कुछ पंक्तियाँ पढकर सुनाई।

इस बीच में उन औरतो के साथ जो मर्द था, वह भी आ गया और बैठकर अख़बार सुनने लगा। वह ठिगने क़द का आदमी था। स्वस्थ और प्रसन्न दीख पड़ता था। दाईं कनपटी के पास रुपये जितना स्याह दाग़ था, जैसे कभी फोड़ा हुआ हो अथवा लहसुन निकला हो। शरारत का यह पहला दिन था। वह उसी ओर से लौट कर आ रहा था। उसके मन में कोई बात थी, जिसे कहने के लिए वह उत्सुक था। अवसर मिलते ही बोला—"मैं और रफ़ीक़ जहाँ टिकट बँटते है, पैसे ढूंढने गये थे। [illegible] को जेब में से कुछ न कुछ गिर ही जाता है। रफ़ीक़ को एक [illegible] और शेर की तस्वीर वाली एक चवन्नी मिली, लेकिन [illegible] क़िस्मत है, मैंने भी बहुतेरा ढूंढा, मुझे सिर्फ़ यह [illegible]

उसके हाथ में सुर्ख़ रंग की पेन्सिल का एक टुकड़ा [illegible] जमाल और अब्दुल समद को दिखा रहा था।

"ठीक है", एक औरत ने, जो शायद उसकी पत्नी थी, उसकी पीठ थपकी देते हुए कहा—"तुम लिखने पढ़ने वाले आदमी जो थे, पेन्सिल ही तो मिलनी थी।"

और सब लोग मुस्कराये। लेकिन जमाल टस से मस न हुआ। ी प्रकार चुप बैठा रहा। किसी बात का उस पर क्या प्रभाव होता है, हरे से इसका अनुमान लगाना कठिन था

"सरकस तो अच्छा मालूम होता है।" कौशल बोला।

"नहीं, कोई कमाल नहीं। ऐसे तमाशे तो मदारी दिखा जाते हैं।"

माल ने कहा—"यहाँ से सब नज़र आता है। हम देख रहे थे।"

सरकस वालों ने कनातें लगाईं थीं। लेकिन यहाँ पेड़ के नीचे बैठकर उनके ऊपर से स्टेज पर झाँका जा सकता था। बाहर अँधेरा और भीतर उजाला होने से सब कुछ नज़र आता था। शामियाने क़नातें से काफी ऊँचे थे।

"लौंडिया ने तारों पर जो नाच दिखाया था, वह तो कमाल की बात है।" पेंसिल वाले व्यक्ति ने नाच और लौंडिया की कल्पना को आँखों में भर कर कहा।

"हाँ, वह अच्छा था।" जमाल ने धीरे से समर्थन किया, और फिर बोला—"टिकट बहुत ज्यादा है। सवा रुपया, ढाई रुपये और साढ़े तीन रुपये। ग़रीब आदमी तो फिर भी देख लेते हैं; लेकिन अमीर नहीं आते।"

"अमीर आदमी खेल तमाशे क्या देखेंगे! उनके लिये तो अपनी माया का मोह ही काफी है।" कौशल कहकर मुस्कराया, लेकिन दूसरी ओर से दाद नहीं मिली।

"यह सरकस मेरठ से आया है।" पेंसिल वाला आदमी बोला—"मेरठ में टिकट इतना नहीं था, वहाँ नौ आने से शुरू होता था।"

"यह शहर भी तो बड़ा है।" जमाल ने कहा।

... ज़मीन सूंघता-सूंघता इधर आ निकला। उसका रं

सफेद था, शरीर चुस्त और मजबूत था। शक्ल-सूरत भी अच्छी थी। दुम हिलाता हुआ बहुत ही भला लगता था। "मोती-मोती" जमाल ने उसे पुकारा और बैठ जाने का इशारा किया। कुत्ता बैठ गया।

जमाल ने उसकी ओर करुणाभरी दृष्टि से देखा और बीड़ी का कश लगा कर बोला—"बड़ा अच्छा कुत्ता है। अब जरा आवारा हो गया है। अब वह ठाठ भी नहीं रहा। इसका मालिक पाकिस्तान चला गया है। देखो सामने जो होटल है, पहले वह उसका मकान था। डाक्टर था—बहुत ही मशहूर। मोटर थी, नौकर थे। मोती भी वहीं रहता था, मोटर में घूमता था और दोनों वक्त साबुन से मल-मलकर नहलाया जाता था; मरगून गिज़ाएं (पौष्टिक भोजन), खाता था और गद्दों पर सोता था। रंग चिट्टा सफेद था। अब तो बहुत मैला हो गया। यही हमारे साथ खाक पर लेटा रहता है। जब से यहाँ रहने लगा है, बेचारे की हालत बिगड़ गई।"

जमाल ने यह किस्सा सुनाया और चुप हो गया। उसके मुख पर शांति और इत्मीनान की झलक दिखाई दी। आँखों का रंग बदल गया, जैसे कोई गहरी बात सोच रहा हो। शायद वह कुत्ते के सुखद अतीत की कल्पना कर रहा था; हो सकता है उसे अपने ही अतीत की कोई कहानी स्मरण हो आई हो।

कौशल ने कुत्ते को पहले भी कई बार देखा था। और कुत्ते के साथ वह भी घूमा करता था। नूरे के काले कुत्ते से यह वाकई अच्छा था। लेकिन कोई विशेष बात नहीं थी। कौशल को उससे कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन अब जमाल की जबानी यह कहानी सुनकर वह उसकी ओर ध्यान से देखने लगा और उसके मस्तिष्क में जमाल की वह कहानी उभर आई, जो रशीद ने उसे सुनाई थी। पहले वह करोल बाग में रहता था। दर्जी का काम करता था……और ?—अब यहाँ पड़ा है। मगर इस कहानी के और भी तो पहलू होंगे, जो अब तक रहस्य बने हुए हैं। इस रहस्य का उद्घाटन कैसे हो ? फिर जमाल ही की क्यों, इनमें से

सभी की एक-न-एक कहानी है। ये सब लोग, जो मैदान में पड़े हैं अथवा पड़े रहने पर मजबूर हैं, हर एक की एक-न-एक कहानी है। जब यह मालूम हो सकता है कि एक कुत्ता इस मैदान में कैसे आया, तो यह क्यों मालूम न हो कि ये लोग—इतने मनुष्य इस मैदान में कैसे आये? क्या दंगों की सी भयानक और बर्बर घटनाएँ इस समाज में नित्य नहीं घटती रहतीं? क्या मनुष्य के पास उनका कोई इलाज नहीं है? कोई उपाय नहीं है?

बाढ़ आती है तो गांवों और खेतों को बहाकर ले जाती है। मनुष्य और मनुष्य की मेहनत का नाश करती है। लेकिन उसी नदी का बंद बांध देने से बाढ़ रुक जाती है। उसी पानी से बिजली पैदा की जा सकती है, खेतियां सींची जा सकती हैं। इसी तरह क्या समाज में जो बाढ़ आती है, उसे नहीं रोका जा सकता, ताकि मनुष्य मनुष्य और अच्छा शहरी बन सके। फ़क़ीर बनकर भटकते फिरने की बजाय अपनी मेहनत और मस्तिष्क से सुन्दर जीवन का निर्माण कर सके?

कौशल इसी बात पर विचार कर रहा था, उसका हल सोच रहा था, और मनुष्य के भविष्य की कल्पना करता हुआ अपने आप में खो गया था। कुछ देर वह इसी मुद्रा में डूबा रहा। लेकिन जमाल और अब्दुल समद का का खयाल था कि वह अख़बार पढ़ रहा है।

जमाल के लेले उसकी बगल से निकल आये थे। उनके शरीर पर गुदड़ियां बंधी हुई थीं, जो उन्हें जाड़े से बचाये रखने के लिये जमाल ने अपने हाथ से सी थीं। अब उन्हें उतार कर अलग रख दिया। शरीर पर हाथ फेरा, थूथनियों को बार-बार सहलाया और उनके माथों को इस प्रकार प्यार से चूमा जिस प्रकार स्नेहमयी माता अपने नींद से जगे हुए बच्चे को दुलारती है और रात भर सीने में रुकी हुई मोह-ममता को उसपर उँडेलती है।

"ख़ूब सोये बेटा! ख़ूब सोये, सर्दी तो नहीं लगी? अच्छा अब खेलो। थोड़ी देर में तुम्हें नाश्ता देंगे।" "इसकी तबीयत कुछ सुस्त है।

दो-चार रोज से जुकाम है। हींग भी दी है। लेकिन आराम नहीं हुआ। मुसरी कही मर न जाय।" अबके वह शहज़ादी को सहला रहा था। कौशल की ध्यान-मुद्रा टूट गई और वह जमाल का जानवरों से यह प्रेम देखकर चकित रह गया।

१६

अमीर अली को जब देखो, अँगोछा बाँधे और कोट पहने दिखाई देता है। और कोट के कालर पर जो फूल है, वह भी जैसे उसके लिबास का एक अंग बन चुका है। अब भी वह अँगोछा बाँधे, कोट पहने और फूल लगाये बिस्तर पर बैठा था। एक गठड़ी-सी सामने खुली पड़ी थी, जिसमें डिब्बियों से निकले हुए चमकदार वरक, कुछ चीथड़े, टूटे हुए डिब्बे और कबाड़ भरा हुआ था। गठरी खोलकर वह इन चीज़ों को दो-चार मिनट तक हसरत और प्यार से देखता रहा—देखता रहा और फिर मुस्कराता रहा। फिर उसने इस कबाड़ में से टूटे हुए आइनों के कई टुकड़े निकाले और उनमें जो टुकड़ा सबसे बड़ा और साफ़ था, उसमें उसने चेहरा देखा, अँगोछे और कोट के कालरों को सँवारा और फिर मुस्कराया। इस बार यह मुस्कराहट होठों से कानों तक फैल गई थी।

नूरा अमीर अली के सामने बैठा था और उसके इस सर्वस्व को ध्यान से देख रहा था और शायद सोच रहा था कि अवसर मिले तो आँख बचाकर उनमें से दो चार चीज़ें, और नहीं तो कम से कम एक-दो चमकदार वरक़ ही अपनी आस्तीन में छिपा ले। लेकिन उसे यह अवसर नहीं मिला। अमीर अली ने कालर और फूल सँवार कर आइने का टुकड़ा वापस रख दिया और गठरी समेट ली। नूरा बेचारा देखता ही रह गया और वह पास बैठे कुत्ते की गर्दन सहलाने लगा।

कौशल जितना इन लोगों में घूमता था, उन्हें क़रीब से देखता था, उतना ही वह उनके चोर दरवाज़ों से परिचित होता जा रहा था। उनके एक-एक वाक्य में, साधारण-से-साधारण घटना ने जीवन —

इतिहास पढ़ सकता था।

दिसम्बर के अंत और जनवरी के आरम्भ में सर्द हवाएँ खूब चलती हैं और शरीर को चीरते हुए निकल जाती हैं। छोटे-से-छोटे दिन और बड़ी-से-बड़ी रातें, यही तो एक समय होता है, जब जाड़ा अपने जोबन पर आता है और उसके सबसे अधिक आक्रमण इन्हीं लोगों पर होते हैं। कौशल एक ऐसी ही सर्द रात को नौ-दस बजे परेड के मैदान में घूम रहा था। रात अँधेरी थी, तारे निकले हुए थे और धुआँ आकाश में छाया हुआ था। पक्षी घोंसलों में और मनुष्य झोंपड़ों और ओढ़नों में दुबके पड़े थे। वह घूमते-घूमते मजार के पिछवाड़े चला गया। इब्राहीम की चारपाई से उसे कराहने की आवाज़ सुनाई दी। कौशल उसके पास चला गया। इब्राहीम बहुत दुखी था और दर्द के मारे करवटें बदल रहा था; कौशल को देखकर भर्राई हुई आवाज़ में बोला—"इन लोगों ने मार-मार कर मेरी तो पसलियाँ तोड़ दीं। मैं दो दिन से खाट से लगा पड़ा हूँ। आप तो इधर आये ही नहीं!"

"बात क्या थी? कोई वैसे ही तो नहीं मारता; कुछ कारण तो होगा?" कौशल ने सहानुभूति प्रकट करने के बाद पूछा।

"यहाँ कुछ फ़क़ीरनियाँ आई थीं, जो इन लोगों के पास ठहरी थीं। ये कहते हैं कि मैंने उन्हें छेड़ा है।"

"जब वे कहते हैं, तो इसमें जरा माशा कुछ-न-कुछ सचाई तो होगी?"

"बाबू जी सचाई क्या होगी? मुझे अगर औरत की जरूरत होती तो फ़क़ीर क्यों बनता? आज भी चाहूँ तो एक नहीं दो-दो रख सकता हूँ। इनकी तरह कोई निकम्मा-निठल्ला तो हूँ नहीं; कमाता खाता हूँ। तुम देखते हो, कभी किसी को भूखा नहीं सोने दिया।"

"यह तो ठीक है। लेकिन समझ में नहीं आता कि इन लोगों ने तुम्हें ख़ाहमख़ाह क्यों पीटा?"

"किसी वक़्त कल दिन में आकर आप इन लोगों से बात तो

कीजिये। बड़े सूरमा बनते हैं। मैं बरदाश्त कर गया कि चलो जाने दो, वरना थाने में रपट कर देता, तो वे सब को बाँध कर ले जाते।"

"लेकिन ये लोग पीर की पनाह में रहते हैं; तुम रपट करोगे तो पीर साहब नाराज़ होंगे।'

"इसीलिये तो मैंने रपट नहीं की। आप इन लोगों को समझायें कि आपस में लड़ा नहीं करते। यह ज़ुल्म करते हो तभी तो यह हालत हुई है। और फिर मुझे मुफ्त में बदनाम भी कर रहे हैं। आप जानते हैं कि मैं तो ऐसा आदमी नहीं हूँ।"

"हाँ, मुझे तो यकीन है कि तुम भले आदमी हो।"

कौशल ने उसका मन रखने को कहा; लेकिन उसे इब्राहीम के वे शब्द स्मरण हो आये जो उसने पजाबी फ़कीरनी की ओर लोलुप दृष्टि से देखते हुए कहे थे—'हमें तो ऐसे आदमी को अपने साथ खिलाने की तमन्ना रहती है।" यह सिर्फ मजाक़ नहीं था। तमन्ना इब्राहीम की आँखों में अंकित हो आई थी, जो उसके मन की लालसा को व्यक्त कर रहीं थी। क्या ताज्जुब इन फ़कीरनियों में भी कोई ऐसी ही सुन्दर आकृति हो, जिसे देखकर यह तमन्ना फिर जाग उठी हो और इब्राहीम ने उसे सचमुच ही छेड़ दिया हो! कौशल उसके पास चारपाई के बाज़ू पर बैठ गया, दो-चार मिनट तक इब्राहीम से बातें करता रहा और उसे विश्वास दिलाता रहा कि वह कल उन लोगों से ज़रूर बात करेगा और उन्हें समझायेगा।

झोपड़ी के बीच में आग जल रही थी और दोनों झोपड़ों के वासी—रफीक़, रफीक की पत्नी और उनकी पड़ोसिन—बैठे आग ताप रहे थे। शायद उनके पास कपड़ा काफी न हो और सोने से तापना भला लगता हो। पड़ोसिन का नाम कौशल को मालूम नहीं था; लेकिन वह उससे भली प्रकार परिचित था। वह एक बच्चे की माँ थी। चेहरा, नम्र, गम्भीर और गोल था; गालों पर माँस भी काफी था। स्वस्थ दीख पड़ती थी। बात भी धीरे-धीरे और संयत स्वर में करती थी। आपस

लड़ाई झगड़ों और निंदा चुगली से उसे कोई सरोकार नहीं था। वह नो कमल के सदृश तालाब में भी रहती थी और जल से भीगती भी हीं थी। कौशल जाने-अनजाने उसके पास आ खड़ा होता था और सकी बातें सुनना पसन्द करता था। उसका पति भी पत्नी की तरह ांत और गम्भीर था। उम्र में वह रफीक़ के बराबर होगा, लेकिन स्थ और बलिष्ठ था। दिन के समय वह वहां कभी नजर नहीं आता ा। शायद खैरात से ही नहीं, मेहनत-मजूरी करके अपना और बच्चों ा पेट पालता था, इसलिये काम पर चला जाता था।

"वह आदमी बड़ा अच्छा है; उसने हमें इतनी रोटियाँ दे दीं कि हम दिन तक खाते रहे।" रफीक़ ने जो प्रसंग छेड़ रखा था, उसे जारी रते हुए कहा।

"मकई की रोटी स्वाद भी तो बहुत लगती है।" रफीक़ की पत्नी ली।

"मकई की रोटी हमारे गांव में बनती थी और हम साग के साथ ते थे।" पड़ोसिन ने गांव के जीवन की कल्पना करते हुए कहा।

"साग तो तुम्हारे यहाँ उस दिन भी आ गया था। और बड़ा चोखा या था। तुमने जो मुझे दिया था, वह इसने तो चखा ही नहीं, मैंने दो टियाँ खाईं और पेट भर गया।"

रफीक़ की बीवी ने पेट पर हाथ फेरा और होठों को जबान से ट कर साग का मजा लिया।

"बैठ जाओ, तुम भी आग ताप लो।" कौशल को खड़े देखकर ोसिन ने कहा और एक ओर को हट कर उसके लिये जगह बनाने ी।

"बस ठीक है, तुम बैठी रहो।" कौशल ने खड़े-खड़े ही कहा और ला, "दो तीन दिन से हवा बहुत तेज़ चल रही है।"

"हाँ, रात को सर्दी के मारे नींद नहीं आती और दिन भर धूप में रहने से भी कुछ नहीं बनता, जैसे धूप में गर्मी न हो।"

कौशल चुपचाप इन शब्दों पर विचार करने लगा। ये लोग दिन छिपते ही सो जाते थे और अब तक बैठे आग तापने का मतलब यही था कि सर्दी के मारे नींद नहीं आती। कौशल की दृष्टि में कितने ही लोग घूम गये, जो दिन भर टाँगें फैलाये घास-फूस की तरह पड़े मैदान में धूप सेंका करते थे।

"ये हराम के तुख्म! कंजर के बेटे···मैं इन सालों की बहन···"

बाईं ओर से बुदे साईं की हड़बोंग सुनाई दी। वह तेज-तेज और उच्च स्वर में बोल रहा था और उसके शब्द सिक्के की गोलियों की तरह कानों में उतर रहे थे, और बहुत ही कर्कश और भद्दे लगते थे।

"लो, सुन लो। गालियाँ तो उसे यों रवां हैं जैसे उर्दू बोल रहा हो।" पड़ोसिन ने कहा।

"गालियाँ तो यह इतनी बकता है कि सुनते-सुनते कान पक जाते हैं।" रफ़ीक़ की पत्नी ने घृणा प्रकट की।

"और फिर कोई दीन ईमान नहीं।" पड़ोसिन कौशल को सम्बोधित होकर कह रही थी, "हिन्दू आयेगा तो उसे 'जयहिंद' कहेगा और मुसलमान देखेगा तो 'सलाम-सलाम' कहकर उस पर चढ़ दौड़ेगा। और पीठ पीछे दोनों को गालियाँ देगा, दोनों को हरामी बतायेगा। सड़क पर से कोई जनाज़ा या अर्थी निकले तो दौड़ कर जायेगा। पांच-दस कदम तक कंधा देगा और फिर कहेगा—अच्छा हुआ साला मर गया। मोटर को देखकर पहले सलाम करता है, जब दूर निकल जाती है, तो पत्थर की तरह गालियाँ फेंकता है।"

इतने में बुदे साईं डोल हाथ में लिये इधर आ निकला और एक क्षण के लिये आग के निकट रुक गया।

"अभी तुम्हारी ही बातें हो रही थीं। कह रहे थे गालियाँ तुम्हें उर्दू की तरह रवां हैं।" कौशल बोला।

"उर्दू वाले की ऐसी-की-तैसी और अंग्रेज़ी वाले की माँ······" उसने फिर गालियाँ दीं और कहा, "हम बावन ज़बानें जानते हैं और

सब में लटम-शटम-गटम फटाफट बोलते हैं।" और वह पानी लेने चला गया।

"देखा, अब भी बाज़ नहीं आया। गालियाँ तो उसकी खुराक बन गई हैं।" पड़ोसिन ने आलोचना की। उसी समय झोंपड़े में पड़ा हुआ उसका बच्चा चिल्लाया। शायद सर्दी के मारे उसे नींद नहीं आ रही थी। वह स्नेहयुक्त स्वर में बोली—"आई, बेटा!"

"इधर आया तो टाँगें तोड़ देंगे। क्या मतलब है इस वक्त घूमने फिरने का?"

कौशल जब यहाँ से जामुन के पेड़ की ओर चला तो झुनिया नई आई हुई औरतों के पास बैठी ऊँचे स्वर में ये शब्द कह रही थी। जाने वह किसे कह रही थी। कौशल भी इधर ही से होकर गुजरा था, शायद वह उसी पर नाराज़ हो; लेकिन उसके निकट पहुँचते ही वह चुप हो गई।

जमाल बीड़ी पी रहा था। ह उकड़ूँ बैठा था और सिर्फ एक पतली-सी कमीज़ पहने हुए था, जैसे उसने सर्दी का चैलंज स्वीकार कर लिया हो और दोनों में होड़ लगी हो कि देखें कौन हारता है? ओढ़ने का कम्बल यों अलग रख छोड़ा था जैसे ठंडी हवा के स्पर्श से उसे सुख मिलता हो। अलबत्ता शहज़ादे को उसकी गुदड़ी पहना रखी थी और उसके नीचे भी गद्दी बाँध दी थी ताकि धरती का जाड़ा उसके शरीर में न समा जाये।

दुरुस्त नहीं हुआ। अगर बच गई तो फिर ले आऊँगा। आदमी अपनी जान पहचान का है। न बची, तो गर्मियों में और खरीद लूंगा।"

"गर्मियों में तो कुछ तकलीफ नहीं होती ?"

"नहीं, गर्मियों में खूब खेलते हैं।"

बीडी खत्म हुई तो जमाल हाथ का टुकड़ा परे फेंक कर सोने की तैयारी करने लगा। इसी बीच में मजार की ओर से रशीद भी आ गया। उसका बिस्तर बिछा हुआ था। उस पर पैवन्द लगी हुई रज़ाई रखी थी। वह आते ही लेट गया। जमाल ने सिगरेट की डिबिया और दियासलाई अपने सामान में से निकालकर उसके सिरहाने रखते हुए कहा—

"देखो सिगरेट और दियासलाई मैं यहाँ रखे देता हूँ।"

"अच्छा !" रशीद ने बिना देखे, टाँगों के गिर्द रज़ाई लपेटते हुए उत्तर दिया।

"हूँ, गंदा कहीं का ! इतना बड़ा हो गया, अभी तक यह समझ नहीं आई कि कपड़े पर पेशाब नहीं किया करते।"

शहज़ादे ने अपने नीचे बिछी हुई गद्दी पर पेशाब कर दिया था। जमाल ने उसे अलग हटाकर गद्दी को उठाकर झटका और उलटा करके बिछा दिया और शहजादे को फिर उसपर बैठाते हुए कहा—

"भीग गई; अब सारी रात सर्दी में मरेगा।"

"बरसात आयेगी, तो कहाँ जाओगे ?" कौशल ने पूछा।

"ये दुकानें और मकान सब हमारे हैं। हम बादशाह भी हैं और फ़कीर भी। हमें कोई मना थोड़े ही करता है।" जमाल ने बड़ी शान से कहा और बोला—"मैं अगर कोतवाली में जाकर रहना चाहूँ तो कोई मना नहीं कर सकता। हमने साहब बहादुर की नौकरी की है।"

"अच्छा कब की थी नौकरी और वह छोड़ क्यों दी ?"

"मैं पहली बड़ी जंग में भर्ती होकर लड़ने गया था; अमेरिका, बर्मा, अफ्रीका फ्रांस, रूस—सब देखे हैं। और हिन्दुस्तान का तो चप्पा-चप्पा

न मारा है। कलकत्ता, बम्बई, नागपुर, पटना, अलाहाबाद, मेरठ, लखनऊ, कराची, लाहौर कौन-सा शहर है जो मैंने नहीं देखा ?"

"अच्छा तो सारे हिन्दुस्तान में घूम आये हो ?"

"और क्या, सारी उम्र घूमते ही तो गुजारी है। यहाँ तो दो साल से रहने लगा हूँ।"

"यह रशीद भी तुम्हारे साथ घूमता था ?"

"नहीं, वह अपनी माँ के साथ रहता था। मैं अकेला ही घूमता था।"

"अब उसकी माँ कहाँ है ?"

"मर गई।"

"कितना अर्सा हुआ ?"

"यही पाँच-सात साल हुए होंगे।"

वह यों कह रहा था जैसे पत्नी की मृत्यु उसके और उसके बेटे के जीवन में बहुत ही साधारण घटना हो। वह उसकी ओर से बिलकुल उदासीन हो। ऐसी घटनाएं होती ही रहती हैं, कौन उनकी तिथियाँ और साल याद रखता फिरे ? बाप की तरह रशीद को भी कोई मलाल नहीं था; वह उसकी बातें यों प्रसन्न होकर सुन रहा था जैसे कोई कहानी, कोई लतीफा सुनाया जा रहा हो।

"उस वक्त से रशीद तुम्हारे पास रहता है।"

"हाँ, अब स्कूल में पढ़ने जाता है। इस वक्त आठवीं जमात में पढ़ता है। इससे पहले मैं अलीगढ़ में साहब के पास नौकर था। एक सौ सत्तर रुपये तनखाह मिलती थी। रशीद भी वहीं छठी जमात में पढ़ा करता था। जब वह दसवीं जमात पास कर लेगा तो मैं साहब के पास जाऊँगा और उसे कहूँगा कि मेरे बेटे को सिफारिश करके अफसर बनवा दो। रशीद अफसर बन जायगा। पाँच सौ रुपये तनखाह मिलेगी और हम लाग-ठाठ से रहा करेगा..."

जमाल कह रहा था। रशीद को हँसी आ रही थी; वह हँसी को जब्त करने की लाख कोशिश करता था, लाख करवटें बदलकर र

को शरीर के गिर्द लपेटता था, मगर हँसी रुकती नहीं थी। जिस प्रकार मैदान को सींचने वाले नल का पेच खुल जाने से पानी हठात् बाहर निकलता है और बूलंदियों में पहुँचकर इधर-उधर बिखर जाता है, उसी प्रकार हँसी रशीद के भीतर से फूट-फूटकर निकल रही थी और उछलती फैलती इधर-उधर बिखर रही थी। जमाल भी मुस्करा रहा था, अपने शब्दों से आप ही प्रसन्न हो रहा था।

रशीद की हँसी और मुस्कराहटों का कारण समझने में कौशल को कुछ अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। वह रशीद को हर वक्त मैदान में खेलते-कूदते और कनकुवे उड़ाते देखा करता था। उसके पढ़ने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। यह सारी कहानी जमाल की मनगढ़त थी। इस एक घटना ने जमाल का असली रूप प्रकट कर दिया था। जमाल ने आज तक जितनी भी बातें की थीं, वे सब काल्पनिक और मनगढ़ंत थी और एकदम निरर्थक और बेतुकी जान पड़ती थी। लेकिन आज वही बातें मूर्तिमान होकर कौशल के सामने नृत्य कर रही थीं। वे अब अर्थहीन और बेतुकी नहीं थीं; बहुत ही सुन्दर और अर्थपूर्ण मालूम होती थीं। वे जमाल की अभिलाषाएं थीं। वह अपने बेटे को पढ़ाना और अफसर बनाना चाहता था'''उसकी छिपकली अफ्रीका से आई थी और महज़ हवा खाकर जी रही थी। ऐ काश ! वह भी हवा खाकर जी सकता''' !

कौशल वहाँ से चला तो बहुत प्रसन्न था जैसे उसने कोई बहुत ही जटिल समस्या हल कर ली हो; एक अबूझ पहेली बूझ ली हो। ठंडी हवा अच्छी लग रही थी।

१७

कौशल काम में इतना व्यस्त रहा कि दो तीन दिन तक इधर नहीं आ सका। अब चला तो उसे इब्राहीम का ध्यान आ गया, उसकी कराहें और वेदनाभरा स्वर याद आया—"उनसे पूछना तो सही मुझे क्यों मुफ्त में बदनाम करते हैं ?" सोचा, चलो पहले उसी की ख़ैर-ख़बर पूछ

लूं। मित्रता का तकाजा है कि इस समय उसके साथ कुछ सहानुभूति की जाय। लेकिन वहाँ पहुँच कर देखा कि इब्राहीम की चारपाई और उसपर बनी हुई छोटी सी झोंपड़ी का कहीं नामोनिशान नहीं है। शायद पीर मुरशद ने फिर उसे अलिफ़ शाह के मज़ार पर जाकर रहने का दंड दिया हो और शायद इन लोगों ने उसे फिर मारा हो और मारकर यहाँ से भगा दिया हो। कारण चाहे कुछ भी हो, कौशल को उसका वहाँ से चले जाना साधारण और स्वाभाविक सी बात जान पड़ी। जो आदमी जिन लोगों में रहता है, यदि उन्हें तुच्छ और नीच समझ कर उनसे घृणा करता है, और अपने आप में बड़ा बनकर रहता है तो उसे इसी प्रकार अपमानित होकर वहाँ से जाना पड़ता है।

कौशल को इब्राहीम के चले जाने का तनिक भी अफसोस नहीं था, बल्कि उसे इस बात का आश्चर्य हो रहा था कि उसने पहले दिन इब्राहीम को कैसे भला आदमी समझ लिया! वह उसके शब्दाडम्बर से क्यों ठगा गया? मनुष्य के बाहरी और भीतरी रूप में कितना अंतर रहता है? उसे एक दम समझ लेना कितना कठिन है?

वहाँ कोई नहीं था; सिर्फ़ उस झोंपड़ी के आगे, जहाँ इब्राहीम रहता था, बच्चे खेल रहे थे। जामुन के पेड़ तले भी कोई आदमी दिखाई नहीं दिया। सब इधर-उधर गये हुए थे। कौशल उस ओर चल दिया, जिस ओर मार्केट बननी शुरू हुई थी; लेकिन बन नहीं सकी थी, और अब तो खोखे भी उठ चुके थे।

तीन-चार बजे का समय था। धूप भली लगती थी। मैदान में छोटी-छोटी घास उगी हुई थी। लेकिन जहाँ कहीं घास बिलकुल नहीं थी, वे सफेद और मटमैले धब्बे ऐसे लगते थे, जैसे मैदान को सफेद कोढ़ हो गया हो। दस पन्द्रह गज आगे बढ़कर सड़क की ओर ढलवान कुछ अधिक था और इस जगह घास भी लम्बी और घनी थी। करीब ही एक खोमचे वाला बैठा था, जो मँहगाई का रोना रो रहा था। उसे शिकायत थी कि सारा दिन मेहनत मजदूरी करने पर भी पेट नहीं भरता।

"इधर भी, उधर भी; ग़रीब आदमी दोनों तरफ भूखे मरते हैं किसी को कोई नहीं पूछता।"

यह आदमी पाकिस्तान गया था। साल-डेढ़ साल इधर-उधर ठोकरें खाने के बाद हिन्दुस्तान लौट आया था और अपने तजरुबे की बात कह रहा था। इस्लामी राज से जो उम्मीदें लगा रखी थीं, वे पूरी नहीं हुई थीं। उसने अपनी आँखों देख लिया था कि बड़े लोग छोटों को लूटते हैं और अपना उल्लू सीधा करते हैं।

"भूख तो पहले से भी बढ़ गई। देश के बटवारे से क्या मिला? और यह आज़ादी क्या हुई?"

"देखो, मैं जो यह कहता हूँ, उसे मानो।" उनमें से एक दुबला-पतला आदमी, जिसका सिर नंगा और घुटा हुआ था और जिसने लाल रंग का स्वेटर पहन रखा था, तेज-तेज बोलने लगा, "मैं तजरुबे की बात कहता हूँ। यहाँ फिर फ़साद होगा; फिर दंगा मचेगा, तुमने जो देखा है, यह दंगा उससे कहीं भयानक होगा।"

सब लोग इस लाल स्वेटर वाले की ओर ऐसे देखने लगे जैसे कह रहे हों, कैसी बहकी-बहकी बातें करता है! एक दंगे ने तो लाखों को नष्ट कर दिया; यह और दंगे की बात करता है; पागल हुआ है!

"लेकिन यह दंगा ऐसा नहीं होगा, जैसा पहले हुआ था। उसमें हिन्दू हों या मुसलमान, जो छोटे हैं, सब एक तरफ होंगे और बड़े एक तरफ। पहले देश का बटवारा हुआ था, अब धन का बटवारा होगा। भूख मिटेगी, तब कहीं शांति होगी और तब तुम्हें यहाँ इनसान बसने दिखाई देंगे। अब तो इनसान ही नहीं है।"

"लो और सुनो, कहता है, यहाँ इनसान ही नहीं हैं।" किसी ने विरोध किया।

"देखो, मैं फिर कहता हूँ कि मेरी बात बिलकुल ठीक होती है और सोलह आने सच्ची होती है। मैंने आज तक जितनी बातें कही हैं, उनमें से एक भी झूठी साबित कर दो, तो मैं तुम्हें सिगरेट भरकर पिलाऊँगा,

वरना तुम मुझे सिगरेट भरकर पिलाना।" लाल स्वेटर वाले ने अपना नंगा और घुटा हुआ सिर हिलाते हुए आत्म-विश्वास के साथ कहा; और एक मिनट तक ठहर कर फिर कहना शुरू किया, "मैं इस आजादी को आजादी नहीं मानता। यह सब ढोंग है और ये लोग इनसान भी नहीं हैं। भूख और अज्ञान ने उन्हें भ्रम में डाल रखा है। आज सौ में पचानवें, बल्कि अठानवें आदमी हिन्दू मुसलमानों में बँटे हुए हैं। जब सचमुच आजादी आयेगी, भूख और अज्ञान मिटेगा, तब अहसास जागेगा और इनसान इनसान बनेगा। और मैं दावे से कहता हूँ।" उसने खम ठोंक कहा, "तब देश फिर एक बनेगा।"

सब चुप बैठे थे। ये शब्द फिज़ा में गूंज रहे थे; विस्तार में फैल रहे थे। कौन कह सकता है कि इन शब्दों में सत्य कितना था, लेकिन वे इतने आत्मविश्वास और दृढ़ता के साथ कहे गये थे कि उन्हें झुठलाना मुश्किल था। जो व्यक्ति अब तक विरोध करता आया था, वह भी घास का एक तिनका दाँतों में दबाये हुए शून्य में झाँक रहा था, और चुपचाप इन शब्दों को फ़िज़ा में गूंजते हुए सुन रहा था।

"मेरे दिमाग़ में" लाल स्वेटर वाला व्यक्ति उँगली से मस्तिष्क को ठोकते हुए फिर बोला, "शिव जी की तीसरी आँख है। मैं इस आँख से सब कुछ देखता हूँ, सब कुछ जानता हूँ, और सब कुछ देखते और जानते हुए ही मैंने यह बात कही है। तुम सोचो तो सही, दुनिया किधर जा रही है?"

कौशल वहाँ से उठकर चल दिया। ये लोग मुलफ़ई यार है; सारा-सारा दिन दम लगाते है, और बेकार गप्पें हाँकते हैं, वह यह सोचते हुए इधर-उधर टहलने लगा। मैदान में बहुत से लोग बिखरे पड़े थे। अब धूप नहीं थी; फिर भी उन्हें इस धरती पर लेटे रहना अच्छा लगता था। यहाँ उन्हें सुख मिलता था, आराम मिलता था और शरीर में ताजगी और शक्ति आती थी। भल्ली वाले, मालिश वाले, बेकार और फ़क़ीर—जैसे आधी दिल्ली मैदान में आ बसी हो। हर रोज़ नये चेहरे दिखाई देते थे और जब कभी कोई नया चेहरा सामने आता था तो कौशल को अब्दुल समद के ये शब्द स्मरण हो आते थे—'यह परेड ग्राउंड बेघरों और गरीबों की पनाहगाह है।' और धरती पर हुक्का पटकता हुआ अब्दुल समद उसकी दृष्टि में साकार उभर आता था।

साये फैलते-फैलते एक दूसरे के गले मिल गये थे। सर्दी का दिन डूबते क्या देर लगती है? जैसे-जैसे दिन डूबता है, सर्दी भी बढ़ने लगती है। हवा काफी ठंडी हो चली थी। कुछ-कुछ अँधेरा भी हो चला था। कौशल के मस्तिष्क में इस समय एक साथ कई विचार घूम रहे थे और आपस में यों गड़बड़ हो गये थे कि कोई भी बात स्पष्ट नहीं हो पाती थी। जब आदमी का जेहन साफ न हो तो बाहर की चीज़ें भी स्पष्ट नहीं रहती। बढ़ते हुए अँधेरे में बैठे हुए लोग ऐसे लगते थे जैसे मलबे के ढेर पड़े हों और राजधानी की ये शानदार इमारतें रेज़ा-रेज़ा टूट-कर इस मैदान में गिरती जा रही हों और वह इस मलबे में दबा जा रहा हो। 'दबने' के कल्पित भय ने उसे एकदम चौंका दिया। उसने गर्दन ऊपर उठाई और शून्य में झाँकते हुए अर्धचेतनावस्था में बड़-बड़ाया—"हाँ, यह समाज टूट रहा है, टूट रहा है। उसे टूटने से कोई व्यक्ति और शक्ति बचा नहीं सकती!"

कौशल अब पूर्णरूप से चेत गया था। उसके विचारों में किसी प्रकार की गड़बड़ नहीं थी। उसने अपने ये शब्द साफ-साफ सुने थे और अब उन पर विचार कर रहा था और मन-ही-मन में उन्हें दोहरा रहा

—"हां, यह समाज टूट रहा—टूट रहा है !" उसने अकस्मात् ये शब्द
ां कहे थे ? इनका अर्थ क्या है ? —महत्त्व क्या है ? क्या यह भी
कार और व्यर्थ नहीं हैं ?

प्रत्येक व्यक्ति का कम-से-कम अपनी दृष्टि में तो कुछ महत्त्व होता है। इसलिए उसकी 'अपनी बात का भी एक महत्त्व होता है। फिर हम दूसरे की बात को व्यर्थ और बेकार क्यों मान लेते हैं ? ये अब्दुल समद, जमाल, मरीयम, मरीयम का घरवाला और नंगे और घुटे सिर वाला सुलफई जो कुछ कहते हैं—वह बेकार और व्यर्थ क्यों है ? जब उनमें से हर एक का कम-से-कम अपनी दृष्टि में एक महत्त्व है; तो उनकी बात का भी एक महत्त्व क्यों नहीं है ?

यह एक समस्या थी, जिस पर कौशल विचार कर रहा था और बढ़ते हुए अँधेरे में घूर-घूरकर उसका उत्तर ढूंढ़ रहा था।

यह समाज टूट रहा है—जो व्यक्ति इस मैदान में और दिल्ली के दूसरे पार्कों में भरे पड़े हैं, वे इस समाज के टूटे हुए अंग हैं। जो व्यक्ति संघर्ष करते-करते हार मान लेता है, अथवा मेहनत का ऐवज न मिलते देखकर मेहनत करना छोड़ देता है, वह बेकार और निकम्मा समझा जाता है, और उस व्यक्ति की बात भी बेकार और निकम्मी समझी जाने लगती है।......

"मेहनत से बात का महत्त्व बनता है"—कौशल एकदम उछल पड़ा। वह अपनी आत्मा में उल्लास को बढ़ते और नृत्य करते हुए महसूस कर रहा था, जैसे उसने सोचते-सोचते चिरंतन सत्य को छू लिया हो—उसने एक ठोस अमूल्य सिद्धान्त का पता लगा लिया हो।

वह इसी सत्य और सिद्धान्त को मन में लिये चुपचाप घूमने लगा। वह अब कुछ और सोचना नहीं चाहता था और मस्तिष्क को इ[...] अतिरिक्त और विचारों से मुक्त कर लेना चाहता था। इस सिद्धा[...] निधि को पाकर जैसे कुछ और सोचने और पाने की अभिला[...]

रही हो। वह अपनी विचारधारा को ब्रेक लगाकर वहीं रोक लेना और ठहरा लेना चाहता हो।

लेकिन विचारधारा को बाँधे रखना तो सम्भव नहीं। मनुष्य सोचता जरूर है। यदि वह आगे की बात सोचना बन्द कर दे, तो पीछे की बात सोचने लगता है। पीछे की बात सोचने से फिर आगे बात उत्पन्न होती है। अगर वह उस पर फिर भी ध्यान न दे, तो वह भविष्यवादी न रहकर अतीतवादी बन जाता है, और उसकी आत्मा और मस्तिष्क का विकास सदा के लिए कुंठित हो जाता है। कौशल के मन में जब आगे की बात सोचने की अभिलाषा न रही तो विचार-धारा की ओर लौटी। उसके मस्तिष्क-पट पर अब्दुल समद, जमान, मरीयम और सुलफई···बार-बार उभरने लगे। वह अब इनके बारे में सोच रहा था और बात में से बात निकल रही थी। इन लोगों ने जीवन में हार मान ली है, मेहनत का एवज न मिलते देख मेहनत से जी चुराने लगे हैं···इसलिए···इसलिए निकम्मे···! लेकिन इसी बात का एक दूसरा पहलू है कि वे मेहनत से जी नहीं चुराते, काम चाहते हैं; पर काम उन्हें मिलता नहीं। समाज उनकी मेहनत और उनकी निर्माण-शक्ति का उपयोग नहीं करता, यानी उन्हें समाज जान-बूझकर और जबरदस्ती निकम्मा और बेकार बना देता है—बेकार सोचने और इस मैदान में पड़े रहने पर मजबूर करता है।

इसी बात का यह दूसरा पहलू था, और कौशल जितना सोचता था उतना ही यह पहलू सत्य और ठोस बनकर सामने आ रहा था, वह इस समाज को टूटते देख रहा था और मलबे के ढेर-के-ढेर उसकी आँखों में उभर रहे थे। और वह सोच रहा था कि यहाँ हज़ारों-लाखों की तादाद में सदा के शरणार्थी रहते हैं जो जिन्दगी का बोझ कन्धों पर उठाये घूमते-फिरते हैं।

इसमें इनका दोष क्या है? जिस समाज ने उन्हें निकम्मा और बेकार बनाया है, वही उनकी बात को निकम्मी और बेकार कहकर

ाहता है। और वे लोग जिन्होंने चन्द सिक्कों के एवज़ अपनी
ो इस समाज के सत्ताधारियों के हाथ बेच रखा है, जो थोड़ी-
दनी में बीवी-बच्चों को पालते हैं, बहुत हुआ तो सोफ़ों पर
शेख़ी बघारने की सुविधा प्राप्त कर लेते हैं। यों उनका जीवन
में व्यतीत हो रहा है, और उनका चिन्तन भी सहज और शिथिल
ाता है, और वह इस समाज की मान्यताओं पर सहज में विश्वास
लेते हैं क्योंकि वह भी इसी समाज का एक अंग बने हुए हैं। वे
इन लोगों को बेकार और निकम्मे समझते हैं, उनकी और उनकी
तों की उपेक्षा करते हैं क्योंकि उनकी उपेक्षा करने से, उनको घृणित
र नीचा समझ लेने से, उनका अपना महत्त्व बढ़ता है, और अपन
थान कुछ ऊँचा दीख पड़ता है। उनकी छिछली शिक्षा, छिछला ज्ञा...
गर्व से फूल उठता है ··!

लेकिन; एक भूचाल आता है, एक धक्का लगता है, और उनके अपने जीवन का एक अंग टूटकर इस मैदान में आ गिरता है। ये भूचाल क्षण-क्षण आते हैं, धक्के क्षण-क्षण लगते हैं, और उनके-जीवन का कोई-न-कोई अंग टूटकर मैदान में गिरता रहता है। वे अपने इस अंग को भी निकम्मा और बेकार समझने लगते हैं और उससे घृणा करते हैं। यह कोई नहीं सोचता कि जिस समाज में मेहनत का एवज न मिलता हो, मनुष्य का शोषण होता हो, वहां लोगों को जान-बूझकर निकम्मा और भिखारी बनाया जाता है, जान-बूझकर उनकी और उनकी बातों की उपेक्षा की जाती है ताकि···ताकि मनुष्य मनुष्य के अधिकारों को न पहचान सके।

कौशल हमवार जगह पर घूम रहा था और वह अनमना-सा घूमता और सोचता रहा। लेकिन अचानक उसे ठोकर-सी लगी, वह ठहर गया और उसे मालूम हुआ कि वह फिर आगे की बात सोच रह
है। जो व्यक्ति बुद्धिमान है, विचारशील है और जनता में घुल-मिलक
रहता है और उसके दुःख-सुख को अपना दुःख-सुख समझकर उसे म

मूस करता है, वह सिर्फ़ अतीत की बात ही कैसे सोच सकता है ?

उसने विचारों से सारे प्रतिबन्ध उठा दिये और उन्हें आगे की ओर बढने दिया। उसके मस्तिष्क में अब्दुल समद, जमाल'''और सब से अधिक यह लाल स्वेटरवाला सुलफई उभर आया था। कौशल ने अभी उसकी ओर उसकी बात की जो उपेक्षा की थी, वह उसे अपनी भूल दिखाई देती थी। दरअसल वह उपेक्षा कर नहीं सका था और उपेक्षा सम्भव भी नहीं थी। उसकी बातों से प्रभावित होकर ही तो वह दंगे और फ़िसाद की बात सोचने लगा था। हत्याकाण्ड और अग्निकाण्ड के कितने ही भयानक दृश्य उसकी दृष्टि में उभर आये थे। अपने विगत का दो-तीन साल का जीवन साक्षात् कहानी बनकर उसके सामने आ खड़ा हुआ था। लोगों ने ये सब कुछ स्वेच्छा से तो नहीं किया था और कोई भी व्यक्ति एकदम इतना पागल और अन्धा नहीं हो सकता। इस अमनुष्यता और क्रूरता के बीज पहले से—बहुत पहले से—इस समाज में पल रहे थे। इस हत्याकाण्ड के पीछे सदियों की कहानी है और कुंठित और अवरुद्ध विकास की कहानी है। जिस समाज का विकास कुंठित हो जाय, वह पंगु और खोखला होकर टूटता और मिटता रहता है, और यह ऐतिहासिक सत्य अनजाने ही उसके इन शब्दों में सिमट आया था—"हाँ, यह समाज टूट रहा है, टूट रहा है।"

कौशल एकबार फिर चौंक उठा, जैसे उसने फिर कोई अबूझ पहेली बूझ ली हो।

जब उसकी बात के पीछे एक ऐतिहासिक कहानी है, जो अनायास ही उसके शब्दों में सिमट आई है, तो इन लोगों की बातों में भी, जिन्हें निकम्मा और बेकार समझकर नजर अन्दाज किया जाता है, ऐतिहासिक कहानियाँ छिपी रहती हैं। इन्हें तो जीवित रहने के लिए दूसरों से कुछ अधिक संघर्ष करना पड़ता है, घृणा और उपेक्षा सहन करनी पड़ती है, भावुक मन पर बार-बार कचोके लगते हैं। इनका

संघर्ष, इनका अनुभव कितना ठोस, कितना सजीव है; संघर्ष और अनुभव से सत्य जन्म लेता है।

कौशल झुंझलाया और उसे अपने आप पर, अपने गलत रवैय्ये पर खेद हुआ क्योंकि उसने सुलफई की बात की, उसे निकम्मी और बेकार समझकर, उपेक्षा की थी। सुलफई है तो क्या ? वह मनुष्य है, और प्रत्येक मनुष्य चाहे वह किसी भी अवस्था में हो महान् है। प्रकृति जब अपनी भौतिक अवस्था में भी जड़ नहीं, सोचती और हरकत करती है—यह मनुष्य तो उसका श्रेष्ठतम चेतन रूप है—और उसकी सोच भी श्रेष्ठतम है। फिर उसकी बात का निरादर कैसा ? उपेक्षा क्यों ? और जो बात संघर्ष और अनुभव से उत्पन्न हो, वह तो एकदम अमर और अमिट है। मनुष्य मर जाता है, उसकी बात जीवित रहती है !

कौशल के मन में अब किसी प्रकार की घृणा और उपेक्षा नहीं थी। वह शुद्ध भाव से सोच रहा था। मनुष्य का महान् रूप उसके सामने था। और इस समय वह लाल स्वेटरवाला सुलफई इस महान् रूप का प्रतीक बनकर सदेह और साकार सामने खड़ा था और वह उँगली से माथा ठोककर सगर्व कह रहा था—"मेरे दिमाग़ में शिवजी की तीसरी आँख है।"

"शिवजी की आँख !" कौशल ने आप-ही-आप दोहराया। शिवजी की इस आंख का भी एक इतिहास था जो मनुष्य के जीवन की तरह लम्बा और विकासशील था। कौशल जितना सोचता था उतनी ही यह आँख उसे बढ़ती और फैलती हुई जान पड़ती थी। माना कि इस आँख को मनुष्य की कल्पना ने जन्म दिया था, लेकिन कल्पना भी तो तभी जीवित रहती है, जब वह अनुभव और यथार्थ पर आधारित होती है। शिवजी की यह तीसरी आँख कल्पनामात्र नहीं है, कल्पनामात्र से जनता को इतना मोह और प्यार नहीं होता। यह तीसरी आँख मनुष्य के युग-युग के ज्ञान का प्रतीक है जो हिमालय की उच्चतम चोटी से सारे विश्व

और तत्व की बात कह रही है; युग-युग के यथार्थ का निचोड़ प्रस्तुत करती है।

'यह आँख जनता का सामूहिक ज्ञान है जो अनुभव और संघर्ष से बढ़ता रहता है, और इस आँख में चमक और तेज पैदा करता रहता है। यह आँख प्रत्येक मनुष्य के दिमाग़ में रहती है। जो मनुष्य जितना दूसरों में घुल-मिलकर रहता है सोचता है और महसूस करता है उसकी यह आँख उतनी ही दूरदर्शी और दिव्यमान हो जाती है। प्रत्येक युग का एक सत्य होता है जो जनता के संघर्ष से जाना जाता है और ऐसे व्यक्ति के मुख से वह सत्य अपने आप अनजाने ही बोल उठता है।

लाल स्वेटरवाले सुलफई की बात इसी सत्य की प्रतिध्वनि थी। उसका एक-एक शब्द अमिट और अमर था और अपने आपको यथार्थ सत्य सिद्ध करने के लिए फिज़ा में गूंज रहा था।

१८

कौशल को इस मैदान से, उसके वातावरण से, अनुराग-सा हो गया है। घंटों यहाँ बैठे रहना, अनजाने विस्तार में—व्यापकता में—झाँकते रहना, अच्छा लगता है। वह शान्त और स्थिर रहने का प्रयत्न करता है; पर वह स्थिर और शान्त नहीं रह सकता। नये-नये विचार उसके मन में उठते रहते हैं और साकार होकर रात के धुंधले वातावरण में नृत्य-सा करते रहते हैं।

आज वह बहुत दिनों के बाद इधर आया था। इसके दो कारण थे। एक तो काम का बोझ अधिक बढ़ गया था। उसके साथी कवि को नई पाठ्य-पुस्तकें लिखने और अनुवाद के काम पर लगा दिया गया था। प्रूफ सिर्फ़ उसे पढ़ने पड़ते थे, और मंज़ूरी के लिए नई पुस्तकें पेश करने के दिन थे, इसलिए प्रूफ इतने आते थे कि सिर खुजलाने की भी फुरसत नहीं मिलती थी। दफ़्तर में जो काम ख़त्म नहीं होता था, उसे घर ले आना पड़ता था और वह रात को बारह-एक बजे तक बैठा प्रूफ़ देखा करता था। जो काम आठ घंटे दफ़्तर में जान मारकर करना पड़ता

हो, और उससे भी इतना वेतन न मिलता हो, कि जीवन को सुखी औ
समृद्ध बनाया जा सके, वही काम रात को करते समय उसकी आत्मा
विक्षुब्ध हो उठती, मन में विद्रोह भर जाता। लेकिन कुछ पैसे अधिक
पाने की आशा में, एक गर्म सूट सिलवाने की लालसा में, वह गर्दन झुकाये
काम करता रहता—करता रहता और जब सोता, तो इतना थक जाता
कि सुबह दफ़्तर जाने के समय ही आँख खुलती।

वह पंद्रह-बीस दिन तक इसी ओवरटाइम के चक्कर में पड़ा रहा
इधर आने का समय ही न मिला।

दूसरा कारण यह था कि लाल स्वेटरवाले सुलफई की बात सुनने
के बाद दूसरे दिन जब वह इधर आया था तो वह यह देखकर चकित
रह गया था कि मैदान में एक भी भिखारी और एक भी झोंपड़ी न
थी। जमाल, रफ़ीक, झुनिया और मरीयम सब लोग न जाने किधर
चले गये थे। उसके मन में विचार आया कि शायद इब्राहीम ने शिकायत
कर दी हो, और सरकार ने उन्हें उठा दिया है।

मालूम करने पर पता चला कि वाक़ई सरकार ने उन्हें वहाँ से उ
दिया है। लेकिन इब्राहीम अथवा किसी और की शिकायत पर न
बल्कि स्वेच्छा से उठाया है क्योंकि सरकार अब शहर की दशा को सुधा
चाहती है। वह स्वतन्त्र भारत की राजधानी को फ़क़ीरों, भिखमंगों औ
कूड़े-कर्कट से पाक करना चाहती है। सरकार ने एक भिखारी
बनाया था, तमाम फ़क़ीरों और निकम्मे लोगों को पकड़कर उसमें
जा रहा था। मैदान में बनी हुई झोंपड़ियाँ पुलिस ने उठा दी थीं
लोग उन्हें आते देखकर इधर-उधर भाग गये थे और बाक़ी सब भि
घर में भेज दिये गये थे।

कौशल कितनी ही देर तक बैठा सोचता रहा कि क्या जर
मरहम लगा देने ही से कोढ़ का इलाज हो सकता है ? जिस सम
ड़ में घुन लगा हुआ हो, क्षण-क्षण टूट रहा हो, क्या उसे भि
और बेकारों से पाक कर देना सम्भव है ? जहाँ सैकड़ों, हज़ा

हर रोज भिखारी बनने पर विवश हों, मेहनत करने वालों को भी काम न मिलता हो, वहाँ एक भिखारीघर बना देने से क्या बनता है ? यह सब धोखा है और एक व्यर्थ चेष्टा है। कोढ़ के दाग़ गर्दन से नीचे हों तो कमीज़-कोट पहन लेने से छिप सकते हैं, लेकिन चेहरे के दाग़ कैसे छिपेंगे ?

वह उस दिन काफी देर तक बैठा शून्य में झाँकता और सोचता रहा था। उसे यह घटना बहुत ही विचित्र जान पड़ती थी।

इसके बाद वह इधर नहीं आया, आने का अवकाश ही नहीं मिला; लेकिन वह इस घटना पर विचार करता रहा था। दफ्तर आते-जाते उसे कितने ही भिखारी मिलते थे और रेलवे पुल पर क़तार-दर-क़तार बैठे दिखाई देते थे। और बेकारी की तो कुछ गिनती ही नहीं थी। उनके दफ्तर में कितने ही पढ़े-लिखे नौजवान काम पूछने आते थे और निराश लौट जाते थे। कम्पोज़ीटरों को शिकायत थी कि आदमी इतने बढ़ गये हैं कि किसी भी प्रेस में काम नहीं मिलता, और मालिक पहले जो काम तनख्वाह पर करवाते थे अब ठेके पर देते हैं, जिसमें कुछ भी पैसे नहीं बनते। इस बढ़ती हुई बेकारी को देखकर प्रेस और दफ्तर के सब लोग दबे रहते थे और मालिक जितना काम करने को कहता था चुपचाप कर देते थे।

कौशल इन्हीं दो कारणों से इधर नहीं आ सका था। लेकिन मैदान और मैदान के वासी उसके ज़ेहन में रहते थे। एक दिन शाम को जब वह दफ़्तर से लौट रहा था, उसने मुनिया को देखा था। वह बाजार में भीख माँगती फिरती थी। वह बहुत ही परेशान और दुःखी जान पड़ती थी। शरीर पहले से कहीं दुर्बल पड़ गया था। पग-पग पर सूखी टहनी की तरह लड़खड़ाती थी। लगता था कि अब गिरी, अब गिरी।

कौशल ने आगे बढ़कर एक चवन्नी उसके हाथ पर रख दी। मुनिया ने गर्दन उठाकर उसकी ओर देखा और फिर आगे चल दी। कौशल को पहचाना तक नहीं।

× × ×

कौशल आज फिर मैदान में आया है और बैठा सोच रहा है, लेकि॰

सोचने का कोई क्रम नहीं है; क्योंकि एकदम बहुत से विचार उसके मस्तिष्क में घूम रहे हैं। बात में से बात निकलती है और इन विचारों में गड़बड़ हो जाती है।

वातावरण निस्तब्ध है और रात भीगी हुई है। आकाश पर तारे टिमटिमा रहे हैं। बादल न होने पर भी फ़िज़ा स्वच्छ नहीं है। एक धुंधलापन चारों ओर फैला हुआ है; जैसे धुआं वातावरण में रच गया हो, उसका एक अविच्छेद अंग बन गया हो।

ऊपर आकाश है और नीचे यह मैदान फैला हुआ है। कौशल ने अनमने में घास का एक तिनका तोड़ लिया है और उसे दाँतों में चबा रहा है। वह इस तिनके को चबा रहा है और अपने काम की और दफ़्तर की बात सोच रहा है। स्कूलों के लिए नई पुस्तकें तय्यार हो रही थीं—नये हिन्दुस्तान की नई पुस्तकें! ये राय साहब वृजविहारी लाल पहले लाहौर में रहते थे, आजादी अथवा देश के बँटवारे के बाद यहाँ चले आये हैं और वही पुस्तकें छापने का व्यापार करते हैं। जो पुस्तकें पहले उर्दू में छपती थीं, वही अब हिन्दी में छपती हैं। क्योंकि अब हिन्दी राष्ट्र-भाषा है। कुछ नई लिखवाई गई हैं और अकसर उन्हीं उर्दू की पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कर दिया गया है, और उनमें अंग्रेज बादशाह और वायसराय की तसवीरों की जगह कांग्रेसी नेताओं और मंत्रियों के चित्र लगा दिये गये हैं, और कोई अंतर और परिवर्तन नहीं हुआ है। पुस्तकें वही हैं, पढ़ाने का ढंग वही है और गुलामी का फ़लसफ़ा वही है—'हिन्दुस्तान की वायु अति गर्म और अति शीतल है, यहाँ के रहने वाले आलसी और निठल्ले होते हैं!'

"आलसी और निठल्ले!" कौशल ने उच्च स्वर से दोहराया और व्यग्र भाव से हँस पड़ा। उसे राय साहब वृजविहारी और उसके बेटे याद आये, सर्दियों में हीटर सेकते हैं और गर्मियों में खसखस की टट्टियाँ लगाकर पंखे की ठंडी हवा खाते हैं, कुर्सियों पर बैठे-बैठे ऊँघ उठते हैं और काम की निगरानी खर्राटों से करते हैं।

वह काफ़ी देर तक उनके बारे में और आलसी और निठल्लेपन के फ़लसफ़े के बारे में सोचता रहा और शून्य में भांकता रहा।

फिर उसे दफ़्तर के दूसरे लोगों की—कम्पोज़ीटरों और क्लर्कों की, अपनी और अपने साथियों की बात याद आई; जिन्हें, ऊँघना तो दरकिनार रहा, सिर खुजलाने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। माथे का पसीना पोंछते रहते हैं और काम करते रहते हैं। वह अपने सामने कितने ही सूखे और उतरे हुए चेहरे देख रहा था और दफ़्तर की बात सोच रहा था। ऐसा लगता था, जैसे यह लोग सदियों से यों ही सिर भुकाये काम करते आये हों, उनके चेहरे सूखते और उतरते गये हों और दूसरी ओर राय साहब और उनके बेटों की गर्दनें फूलती और मोटी होती चली गई हों।

"आलसी और निठल्ले!" उसने फिर उच्च स्वर में दोहराया और वह फिर दफ़्तर की बात सोचने लगा। प्रूफ पढ़ते-पढ़ते उसका कचूमर निकल जाता था, आँखें धुंधला जाती थीं और गर्दन दुखने लगती थी। ऊबकर कहीं भाग जाने को जी चाहता था। मगर भागकर जाय कहाँ? काम नहीं मिलता, जब काम न मिले तो रोटी और कपड़ा भी नहीं मिलता। जीना असम्भव हो जाता है और जीना ज़रूरी है। उसने अब तक भागकर बहुत देख लिया था। वह अखबारनवीसी, प्रूफरीडरी, कम्पोज़ीटरी—और भी कई धंधे बारी-बारी से कर चुका था और हरबार प्रोटेस्ट अथवा हड़ताल में निकाला जाता था। इसके बाद महीनों बेकार घूमना और भूखों मरना पड़ता था। मित्र घृणा करने लगते थे और दोषी बताते थे—"सच्ची बात यह है कि तुम खुद काम करना नहीं चाहते। तुम्हें निकम्मे और निठल्ले घूमना पसंद है।"

जब वह प्रूफ देखते-देखते बहुत थक जाता था और गर्दन उठाकर कुछ सोचने लगता था तो उसे अपने वे भूख-बेकारी के दिन और मित्रों के ताने याद आ जाते थे। सिर आप-ही-आप भुक जाता था और वह फिर प्रूफ पढ़ने में व्यस्त हो जाता था। गर्दन दुखती है; आँखें धुंधलाती

हैं, काम करना जरूरी है । काम से रोटी मिलती है। यह प्रूफ़ पढ़ता है । उसका साथी कवि और एक शास्त्री जी पुस्तकें लिखते और अनुवाद करते हैं । जब किताबें लिखने का काम खत्म हो जायगा तो वे भी प्रूफ़ पढ़ने लगेंगे । काम चाहे कुछ भी करें—पुस्तकें लिखें या प्रूफ़ पढ़ें—उन्हें डेढ़ सौ रुपये महीना तनख्वाह मिलती है । राय साहब इन पुस्तकों से लाखों कमाते हैं और उन हैड मास्टरों, प्रोफेसरों और प्रिंसिपलों को भी हज़ारों मिलते हैं, जिनके नाम से यह पुस्तकें प्रकाशित होती हैं और जो इन्हें सरकार से स्वीकार करवाते हैं और कोर्स में लगवाते हैं······

और पुस्तकें लिखने वाले शास्त्री जी की पत्नी कितने ही दिन बीमार रहकर बिना इलाज के मर गई । वह अब अपनी एक नन्ही बच्ची को साईकिल पर बैठाकर दफ़्तर में साथ लाते हैं और बहला-फुसलाकर पास बैठाये रखते हैं । उसका कवि साथी अभी तक कुँवारा है और कुँवारा ही रहकर जीवन बिता देना चाहता है और कौशल खुद भी कुँवारा है । जवानी की हसरतों को सीने में दबा रखता है····· लेकिन दफ़्तर में काम करने वाले सैकड़ों लोग कुँवारे नहीं हैं, और कुँवारे रहना कोई धर्म और पुण्य का काम भी नहीं है । और आदमी के बस में भी नहीं है । वह इसी तनख्वाह में घर-गृहस्थी का खर्च चलाते हैं—मित्रों से कर्ज और दफ़्तर से पेशगी लेते हैं । जीवन-धारा को बहती रखने के लिए सूखते और तिलतिल करके घुलते जा रहे हैं । और कौशल को मालूम है कि इस दफ़्तर से जीवन के अन्तिम पर्व में तपेदिक़ के रोगी होकर निकलते हैं । उन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती और·····और बिना इलाज के फ़ाके करते हुए······

"आलसी और निठल्ले !" कौशल विद्रूप भाव से हँस पड़ा ।

तनिक शान्त हुआ तो फिर सोचने लगा । उसे ऐसा लगा जैसे वह दफ़्तर में बैठा प्रूफ़ पढ़ रहा है । तपेदिक़ के लाखा-करोड़ों कीड़े सर-सर करते उसके गिर्द घूम रहे हैं, मुँह खोले उसकी ओर बढ़ रहे हैं

उनकी शक्लें भयानक हैं और उनका आकार क्षण-क्षण बढ़ता जा रहा है। वह उनके भय से काँप उठा है, दफ़्तर से भाग निकला है और भागकर इस मैदान में आ बैठा है। उसकी साँस तेज़ चल रही है। शायद तपेदिक के कीटाणु अब भी उसका पीछा कर रहे हैं।

चित्त को शान्त करने के लिए उसने लम्बी—बहुत लम्बी—साँस छोड़ी और अब वह दफ़्तर के बारे में न सोचकर इस मैदान के बारे में सोच रहा है। बल्कि यों कहना दुरुस्त होगा कि वह सनसना-सा मैदान के धुँधले वातावरण में झाँक रहा है। वह सोचना छोड़कर शान्त और स्थिर हो जाना चाहता है। इसलिए वह मैदान के विस्तार में बिना मतलब इधर-उधर झाँक रहा है।

रात काफ़ी चली गई थी और निस्तब्धता बढ़ती जा रही थी। सड़क पर कभी-कभी जो कोई मोटर गुज़र जाती थी, वह भी अब नहीं आती थी। मैदान सो रहा था, सड़क सो रही थी, सारा वातावरण निद्रा में डूबा जा रहा था। लेकिन कौशल की आँखों में नींद नहीं थी, वह इधर-उधर झाँक रहा था। अँधेरा भी ऊँघता और घना होता जा रहा था। तारे तो बदस्तूर टिमटिमा रहे थे, लेकिन पास और दूर की बहुत-सी बत्तियाँ बुझ गई थीं और धुआँ और धुंद अधिक बढ़ती जा रही थी, वातावरण में घुलती और मिलती जा रही थी। अँधेरा ठोस, सदेह और साकार हो गया जान पड़ता था। इसमें झाँकते हुए भय-सा लगता था। कौशल की आँखें उन दो लाल बत्तियों पर गड़ गई थीं जो लाल किले पर ऊँचे-ऊँचे, दो ऊँचे बाँसों पर चमक रही थीं।

"लाल बत्तियाँ !" कौशल बड़बड़ाया और जाने क्या सोचकर मुस्करा दिया, उसका दिमाग़ फिर हरकत में आ गया है और वह फिर सोच रहा है। उसके मन में किसी प्रकार का भय और किसी प्रकार की शंका नहीं है। उसका चित्त स्वस्थ और विचारधारा स्पष्ट है। हवा कुछ तेज़ और ठंडी है लेकिन भली लगती है। उसके मन में कोई विद्रोही भावना जग उठी है और इस ठोस अंधकार में और धुँधले वातावरण

में वह साहसपूर्ण ही झाँक रहा है।

वह झाँकता और सोचता रहा। धीरे-धीरे उसका सोचना भी उस सदेह और साकार होता गया। उसे ऐसा लगा कि इस मैदान के लाखों करोड़ों वासी उसके गिर्द घूम रहे हों, इस अंधकार और विस्तार में भ पड़े हों, वे भी संदेह और साकार हों। कौशल ने सुन रखा था कि अग आदमी कोई हसरत और अरमान दिल में लिये मर जाय, तो उसव आत्मा सदा के लिए भूत और प्रेत वनकर भटकती रहती है। न ज कितने लोग सदियों से हसरतें और अरमान दिल में लिये मर रहे हैं ये उन्हीं की आत्माएँ हैं जो भूत वनकर वातावरण में घूम रही हैं अजीव-अजीव हरकतें कर रही हैं और स्वाँग भर-भरकर एक दूस का मुंह चिढ़ा रही हैं। कभी नाचती और गाती हैं और कभी खि खिलाकर हँसने लगती हैं; जैसे वे इस वातावरण की, अपने आपकी औ इस पूरे समाज की खिल्ली उड़ा रही हों; एकदम चंचल और उद्दण्ड उठी हों।

कौशल इस अंधकार में और धुँधले वातावरण में झाँकता रहा। प्रेतात्माओं की अजीव-अजीव हरकतें देखता और उनके बारे में सोच रहा। ये प्रेतात्माएँ उसके गिर्द घूम रही थीं; मैदान में भरी पड़ी थी नाच और गा रही थीं; खिल-खिलाकर हँस रही थीं।

शान्त और निस्तब्ध वातावरण में उनके नाच-गाने की आवाजें अ उनकी खिलखिलाहटें साफ़ सुनाई देती थीं। वह इस वातावरण इ अपने आपकी और इस सारे समाज की खिल्ली उड़ा रही थीं। उन अंग-अंग में, हरएक हाव-भाव में, विद्रोह-भावना भरी हुई थी। उ कुचली हुई हसरतें और अरमान देह धारण करके नाच रहे हों; ग रहे हों, मुंह चिढ़ा-चिढ़ाकर किसी से इंतकाम ले रहे हों। जानें ये प्रेत त्माएँ कब से इसी प्रकार भटकती, नाचती और गाती रही हैं, अ अब एकदम विद्रोही और उद्दण्ड हो उठी हैं।

धीरे-धीरे सर बढ़ता गया और फिर [illegible]

धमक्का—मानों क़यामत मच गई, जैसे एकसाथ करोड़ों पाँव धरती पर पड रहे हों, करोड़ों इंसान एकसाथ चिल्ला रहे हों और आपस में धक्कम-पेल कर रहे हों। शोर के मारे कान फटे जा रहे थे। मगर कौशल चुपचाप बैठा सुन रहा था, देख रहा था। उसके मन में किसी प्रकार का भय नहीं था, बल्कि वह अपने भीतर अद्भुत हर्ष और उल्लास का अनुभव कर रहा था। जैसे ये प्रेतात्माएँ, कुचले हुए अरमानों और हसरतों का धूम-धमक्का न हों, स्वयं जीवन नाच रहा हो, जीने का अधिकार माँग रहा हो। इस शनैः-शनैः टूट रहे समाज को एक जोर का धक्का देकर न्याय और सत्य का ऐतिहासिक फ़ैसला स्थापित कर देना चाहता हो ······

धीरे-धीरे धूम-धमक्का और शोर कम होता गया और कौशल का मन भी शान्त और स्थिर होता गया। वह बैठा भाँकता और देखता रहा। भीड़ छाती रही और शोर कम होता रहा। शायद आधी रात ढल रही थी और आधी रात को ही प्रेतात्माओं का पहरा होता है। वह देखता और सोचता रहा। धीरे-धीरे वातावरण फिर शान्त और निस्तब्ध हो गया। लेकिन उस धूम-धमक्के की और नाच-गाने की प्रति-ध्वनि देर तक फ़िज़ा में गूँजती और सुनाई देती रही। अंधकार में से इक्का-दुक्का चेहरा उभरता और कौशल के सामने से गुज़रता रहा। ऐसा लगता था; जैसे ये चेहरे उसके जाने-पहचाने हों, अपनी हसरतों और अरमानों की बात कह रहे हों। हाँ, वह वाक़ई उन्हें जानता था, ये वही लोग थे जो सिर झुकाये दफ़्तर में काम करते थे, घर-गृहस्थी का खर्च चलाते थे और यही वे लोग थे जो तपेदिक के रोगी बनकर दफ़्तर से निकलते थे, जिन्हें कोई सहायता नहीं मिली थी और जो बिना इलाज के फ़ाक़ों से······

कुलबुलाते तपेदिक के कीड़े और भयानक दृश्य !

कौशल सोचना बंद करके फिर वातावरण में भाँकने लगा। लेकिन अब उसका चित्त शान्त था और विचारधारा स्पष्ट थी, सोचना

बंद करना उसके वश की बात नहीं थी। हवा तेज़ और ठंडी होती जा रही थी और अंधकार में से चेहरे उभर-उभरकर सामने आ रहे थे। अब्दुल समद, जमाल और मरीयम—वह उन्हें पहचान सकता था और उनसे बात कर सकता था। वह उन्हें देखता और उनसे बातें करता रहा। देखते-देखते एकदम बहुत-से चेहरे अंधकार में उभरे और एक दूसरे में खलत-मलत हो गये—वे उभरते और खलत-मलत होते गये—सैकड़ों, हज़ारों, लाखों चेहरे खलत-मलत होकर एक ही देह में समा गये। अब कौशल के सामने सिर्फ़ एक ही देह थी—लम्बी, चौड़ी, ऊँची, भीमकाय देह ! वह सारे वातावरण में फैली हुई थी, जैसे खुद मैदान की आत्मा साकार हो उठी हो। उसका सिर नंगा और घुटा हुआ था, उसने लाल स्वेटर पहन रखा था। और उसके चौड़े माथे पर शिवजी की तीसरी आँख चमक रही थी, उसने सिर घुमाकर सारे संसार पर दृष्टि डाली और बड़ी गम्भीरता से भविष्यवाणी की—

"यह युग बदलेगा, अवश्य बदलेगा और तभी मनुष्य, मनुष्य बनेगा !"